संस्थापक :
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

जन्म शताब्दी
विशेषांक

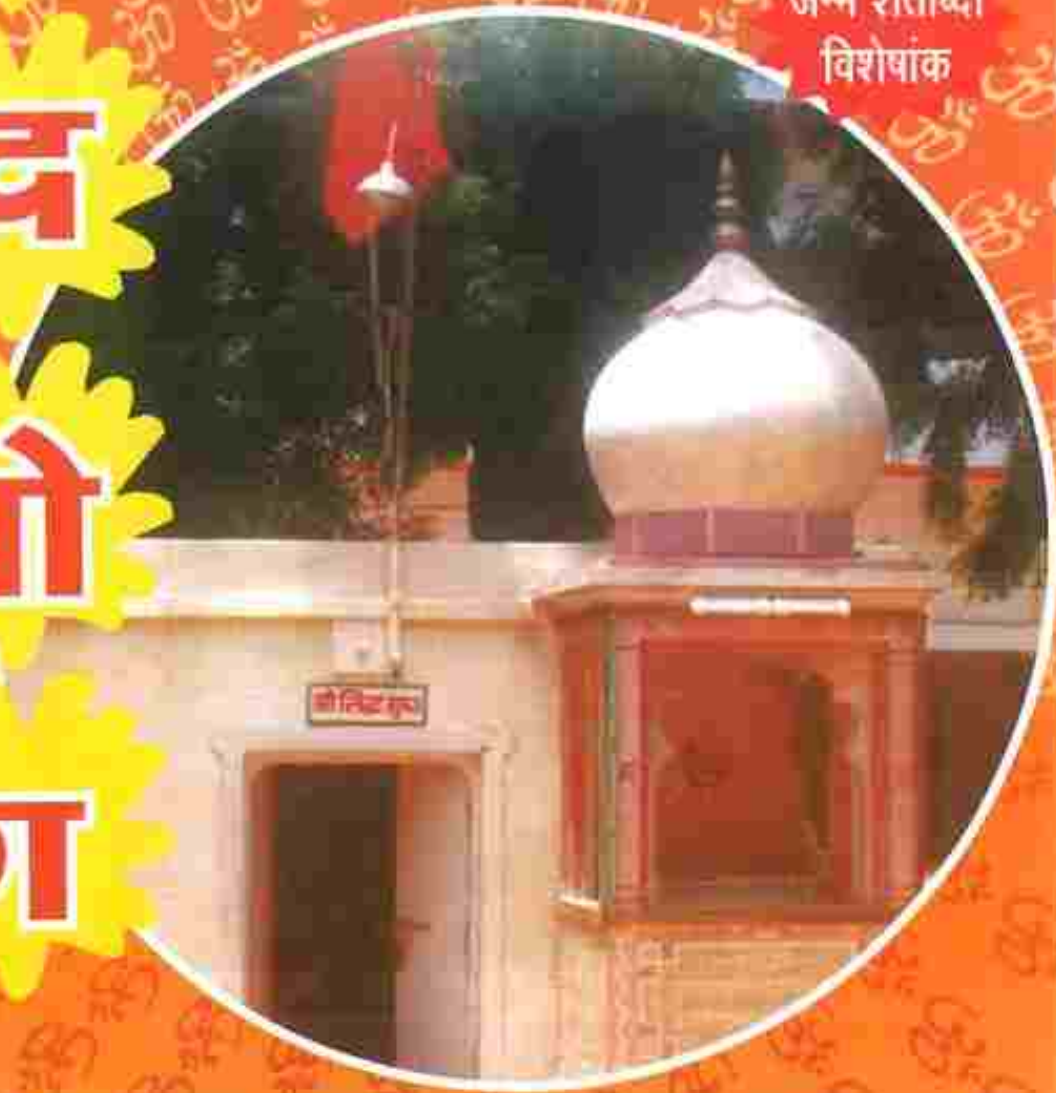

वर्ष : 42; अंक : 6
सितम्बर, 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

शरणागतियोग

(भगवान् श्रीकृष्ण का दिव्य उपदेश)

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥ (9/32–33)

हे अर्जुन! मेरे अनन्यशरण होकर स्त्री, वैश्य और शूद्रगण तथा चाण्डालादि पापयोनि वाले भी निश्चय परमगति को प्राप्त होते हैं। फिर पुण्ययोनि ब्राह्मण तथा राजर्षि (मेरे शरणागत) भक्तों की तो बात ही क्या है। अतएव तुम इस सुखरहित और अनित्य मनुष्य जन्म को पाकर निरन्तर मेरा ही भजन करो।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (9/34)

तुम मुझमें ही मन रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार मेरे शरण होकर आत्मा को मुझमें समाहित करके तुम मुझको ही प्राप्त होओगे।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ (18/64)

सब गोपनीयों में भी परम गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन तुम फिर सुनो। तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसीलिए तुम्हारे हित की बात बताता हूँ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (18/65–66)

हे अर्जुन! तुम केवल मुझमें ही मन रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। ऐसा करने पर तुम मुझको ही प्राप्त होओगे। यह मैं तुम्हें सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे (बहुत ही) प्यारे हो। सब धर्मों (दूसरे सब तरह के आश्रयों) को त्यागकर एकमात्र मेरी ही अनन्य शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से सर्वथा छुड़ा दूँगा। तुम चिन्ता न करो।

यही सर्वोत्तम योग है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणांनाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष: 42 अंक : 6

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदे सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगीनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।

श्रीमद्भागवत् 12/13/1

ब्रह्म, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण जिनका दिव्य स्तोत्रों द्वारा स्तवन करते हैं, सामगान करने वाले लोग अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं, ध्यानमग्न एवं तल्लीन चित्त से योगी जिनका साक्षात्कार करते हैं और जिनका पार सुर और असुर कोई भी नहीं पाते इन भगवान विष्णु को नमस्कार है।

सितम्बर, 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सलाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 9
3. सद्गुरु रूप में स्वयं भगवान – अवनीश भटनागर 12
4. कामाख्या की यात्रा में सत्संग लाभ – डॉ. विजय सिंह 18
5. श्री गुरुदेव जी द्वा[illegible] । साधक एवं गृहस्थों को उपदेश – ब्रह्मचारी ओमप्रकाश 22
6. जीवन में योग की आवश्यकता – आचार्य पूर्णचन्द्र पन्त 26
7. कर्म और पुनर्जन्म – रामेश्वर खण्डेलवाल 29
8. इच्छा–त्याग में ही परम सुख है – स्व. भगवानलाल हरिभाई व्यास 32
9. सद्गुरु की अहैतुकी कृपायें – जगदीश राय शैसल "अधम" 38
10. महा औषधि है– "समय" 43
11. पद्यात्मिका श्रद्धांजली – द्वारका प्रसाद शर्मा 45
12. वंदना – भूपेन्द्र "अंकुश" 53
13. जड़ी–बूटी चिकित्सा : युग की आवश्यकता – पं. लीलापत शर्मा 54

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

योगी का अन्तर्धान

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने पिछले प्रकरण में संयम के आधार पर साधक को परचित्त का ज्ञान किस प्रकार से होता है, इस विषय को भलीप्रकार से खोलकर समझाने का प्रयास किया है। संयमित मन को योगी जहाँ लगाना चाहता है लगा सकता है और संयमित मन वाले योगी का बुद्धि सत्व परम निर्मल होने के नाते वह जिस वस्तु का साक्षात्कार करना चाहता है उसका साक्षात्कार उसको संकल्पमात्र से ही हो जाया करता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि योगी के मन में इस बात का स्फुरण हो जाये कि–मैं अमुक वस्तु को जानना चाहता हूँ। उस संकल्प के आधार पर ही वह योगी उस वस्तु तत्व को जान लेता है, क्योंकि उसके मन में उस परम सद्गुरु का प्रकाश भरा रहता है। अत: ज्यों ही संकल्प का स्फुरण हुआ त्यों ही योगी ने उसे तत्काल जान लिया।

इससे पूर्व किसी प्रकरण में परचित्त ज्ञान के विषय में समझाया गया था। उसमें मुख्य बात यह थी कि योगी ने किसी के चितिमात्र चित्त को अपने संयम का लक्ष्य बनाया। अत: उसे प्रख्याप्रवृत्ति–स्थितिशील चित्त का ही साक्षात्कार होगा न कि उस विषय का जिस विषय में वह साधक अनुरागी है। चित्तज्ञान के संयम के आधार पर तो इतना ही जान पायेगा कि अमुक व्यक्ति का चित्तस्वरूप विशुद्ध सत्वस्वरूप है एवं दूसरे व्यक्ति का चित्तस्वरूप प्रवृत्ति रूप रज प्रधान है। इसके अतिरिक्त अमुक व्यक्ति का चित्त स्थिति रूप तमप्रधान है। केवल मात्र इतना ही उस समय योगी के संयम का विषय था। इसके अतिरिक्त योगी यदि यह जानना चाहेगा कि–अमुक साधक का चित्त किन क्रियाओं में क्रियान्वित है एवं किन विषयों में अनुरागी है तो वह उसके संयम का दूसरा विषय होगा न कि चितिमात्र चित्त के ज्ञान से रंजित चित्त को जान सकेगा। इसके आगे के सूत्र में भगवान पतंजलिदेव ने अन्तर्धान के विषय का वर्णन किया है।

अन्तर्धान क्रिया के विषय में लोगों के मन में बहुत सी भ्रांतियाँ हैं। कितने ही लोगों का विचार है कि–अन्तर्धान होता ही नहीं। इस क्रिया को ही गप कहकर लोग अपने मन को उपराम कर लेते हैं। भारतवर्ष में अकर्मण्य लोगों का यह एक सिद्धांत सा बन गया है कि जो विषय उनकी समझ में न आये उसे अपनी मति के अनुसार निश्चय करके एवं उस सिद्धांत को गलत बतलाकर छोड़ देते हैं। यही बात योगी की अन्तर्धान क्रिया के विषय में भी समझ लेनी चाहिए। वस्तुत: शास्त्रीय सिद्धांत हमारे पूर्वजों की ऋतुम्भरा प्रज्ञा का शुभ परिणाम है। योगी सम्प्रज्ञात

समाधि का अभ्यास करता हुआ वितर्कानुगत, विचारानुगत एवं आनन्दानुगत इन तीन श्रेणियों में से निकलकर जिस समय अस्मितानुगत योग का विद्यार्थी बनता है एवं निर्वाणोन्मुखी वृत्ति को प्राप्त करता है उस समय उस योगी की बुद्धि में ऋत् का वास हो जाया करता है। जब तक साधक इन स्तरों को तय नहीं कर लेता एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह सिद्धांत का निर्णायक नहीं हो सकता, किन्तु फिर भी लोक में यह देखने में आता है कि जिस किसी भी व्यक्ति ने थोड़ी–बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली, वही अपने आपको सब प्रकार से योग्य एवं सिद्धांतों का निर्णायक समझ बैठता है एवं अपने प्रख्याप्रवृत्ति स्थितिशील चित्त के साथ लोगों को मार्गदर्शन कराने लगता है। अन्त में पहुँचता उसी लक्ष्य को है—"अन्धे न नीयमानां यथा अन्धा:" एक अन्धा दूसरे अन्धेको उंगली पकड़कर ले जाता है, रास्ते का ज्ञान न इसको है न उसको। इसी प्रकार से जो लोग शास्त्रीय सिद्धांतों को न समझकर अपनी मति के अनुसार शास्त्रविरुद्ध गलत निर्णय दे देते हैं वे लोग "अन्धे न नीयमानां: यथा अन्धा:" की उक्ति को चरितार्थ करते हैं। अन्तर्धान क्रिया के विषय में भगवान पतञ्जलिदेव अपना सत्य निर्णय लिखते हैं:–

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्द्धानम्।

अर्थात्–जिस समय योगी काया के रूप में संयम करता है तो वह उसकी ग्राह्य शक्ति को रोक लेता है। उसके परिणामस्वरूप देखने वाले की आँखों का प्रकाश उसको छू नहीं पाता, इसके फलस्वरूप योगी अन्तर्धान हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह योगी किसी को भी दिखाई नहीं देता। पढ़िये इस सूत्र पर श्री ""तदेव जी का भाष्य:–

कायस्यरूपे संयमाद् रूपस्य या ग्राह्यशक्तिस्तां प्रतिस्तम्भति ग्राह्यशक्तिरतम्भे सति चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानमुत्पद्यते योगिनः, एतेन शब्दाद्यन्तर्धानिमुक्तं वेदितव्यम्।।

अर्थात्–जिस समय योगी काया के रूप में संयम करता है तो अपने मन के दृढ़ संकल्प से उस रूप की ग्राह्यशक्ति को बाँध लेता है। उसके फलस्वरूप देखने वाले की आँखों का प्रकाश कायरूप की ग्राह्य शक्ति के स्तम्भित होने से उसके शरीर पर नहीं पड़ता है। ऐसा करने से योगी को अन्तर्धान प्राप्त हो जाता है। इस बात को स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझ लेना चाहिये कि कृष्णपक्ष की काली अंधेरी रात में कोई तेज पावर का बिजली का बल्ब जल रहा है उस तेज रोशनी की ओर हमारी आँखें चटपट देख लेती हैं और उसको देखकर साधक यह जान जाता है कि यह बिजली का प्रकाश यहाँ से इतने मील की दूरी पर अमुक गाँव में हो रहा है। कहने वाला मनुष्य बड़े वेग के साथ चटपट कह देता है कि–वह प्रकाश इतना तेज था कि उसकी झलक पड़ते ही हमारी आँखें उधर खिंच गईं एवं उसको जान लेने की यह इच्छा प्रबल हो गई कि हम जानें कि यह क्या वस्तु है? यह हुआ साधक का उस प्रकाश के प्रति चक्षुप्रकाशसम्प्रयोग। अर्थात् उस प्रकाश में इतनी अधिक ग्राह्यशक्ति है जिसने हमारी आँखों

की रोशनी को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और हमारी आँखों ने उसको देख लिया। इसी प्रकार से यदि कोई व्यक्ति तेज रोशनी से जलने वाले उस विद्युत बल्ब को किसी काले कपड़े मोमजामे आदि से या ऐसी किसी और वस्तु से कि जिससे ढँक देने से उसका प्रकाश बाहर न जा सके, उसको ढँक ले तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि उसकी ग्राह्यशक्ति को रोक देने के कारण वह किसी को भी दिखाई नहीं देगा। यह तो एक उदाहरण है; उदाहरण एकाक्षी हुआ करता है। ग्राह्यशक्ति के स्तम्भन का अर्थ समझाने के लिए उदाहरण के साथ ही उस विषय को स्पष्ट किया जा सकता है। एक मनुष्य तीव्र प्रकाश वाली टार्च लाइट को हाथ में लेकर चलता है जब उसको मार्ग देखना होता है तो टार्च के स्विच को दबा देता है। उसमें से प्रकाश निकलने लगता है। आँखों के अन्दर भी प्रकाश मौजूद है, आँखों का प्रकाश भी उस प्रकाश पर पड़ा और उसने जान लिया कि मार्ग साफ है। कदाचित् देखने वाले की आँखों में प्रकाश हो ही नहीं तो आप भले ही टार्च लाइट फेंकते रहो उसे कुछ भी दिखाई नहीं देगा। देखने वाले की आँखों में भी प्रकाश हो तभी टार्च की रोशनी दिखाई देगी। क्योंकि–टार्च के अन्दर तो ग्राह्यशक्ति मौजूद है। किन्तु आँखों में प्रकाश न होने से नहीं देखा जा सकता है। इसी प्रकार अन्तर्धान क्रिया में जिस समय योगी धारणा के बल से काया के रूप में संयम करता है तो अपने दृढ़ सकल्प से उस रूप की ग्राह्य शक्ति को स्तम्भित कर लेता है, रोक लेता है। उसके फलस्वरूप वह साधक वहाँ बैठा रहने पर भी किसी को दिखलाई नहीं देता। इसी का नाम अन्तर्धान क्रिया है। संयम सिद्ध योगी के लिए अन्तर्धान होना सहज सी बात है। अन्तर्धान का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि–योगी का शरीर नष्ट हो जाता है या कहीं चला जाता है। चला कहीं नहीं जाता वह मौजूद तो वहीं पर रहता है किन्तु सर्वसाधारण की आँखों का प्रकाश उस पर नहीं पड़ता। इसके फलस्वरूप वह योगी वहाँ पर बैठा हुआ ही छिप जाता है। भगवान विश्वात्मा श्री कृष्ण के चरित्रों में यह बात कई जगहों पर पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि–उन्होंने कई स्थानों पर स्वयं को अन्तर्हित किया और उनके मित्रों का समुदाय उनको ढूँढने की चेष्टा करता रहा किन्तु वे किसी को भी दृष्टिगोचर नहीं हुए। रासलीला को प्रकरण आप लोगों ने पढ़ा ही होगा। उसमें अन्तर्धान क्रिया को कितने स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया है।

भगवान श्रीकृष्ण ने रासलीला आरम्भ कर दी। अपनी कायनिर्माण शक्ति से अपने हजारों शरीरों का निर्माण किया। जितनी गोपिकायें थीं, उतने ही श्रीकृष्ण तत्काल दिखाई देने लगे–

अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवो, माधवं माधवमन्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः, संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः।।

अर्थात्–एक-एक श्रीकृष्ण और एक-एक गोपी इस प्रकार मण्डलान्वित चक्र में हजारों गोपियाँ और हजारों श्रीकृष्ण दिखलाई दे रहे थे। इस प्रकार रासमण्डल आरम्भ हो जाने के बाद जब उन गोपियों के मन में कुछ अहंकृति के भाव पैदा हुए तो उन सबके

देखते–देखते ही श्रीकृष्ण कायारूप में संयम करके रूप की ग्राह्यशक्ति को स्तम्भित करके श्री राधिका जी को लेकर अन्तर्धान हो गये तथा थोड़ी दूर चलने पर श्री राधिका जी को भी छोड़कर अन्तर्धान हो गये। परिणामस्वरूप श्री राधिका जी एवं ब्रजगोपियाँ बड़ी व्याकुल हुई और विलाप करने लगीं तो भगवान उनके बीच में ही प्रकट हो गये।

तासामाविर्भूच्छौरी स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

अर्थात्–कामदेव को मथन करने वाले श्रीकृष्ण पीताम्बर और माला पहने हुए उन सबके बीच में प्रकट हो गये। यह था श्रीकृष्ण का अन्तर्धान।

समझने की बात केवल मात्र एक ही है–कि साधक को कोई क्रिया तीव्रतम अभ्यास के बाद सिद्ध हो पाती है एवं साधना के बल से ही साधक योगी उसे कर पाता है, किन्तु योगिराज एवं श्रीकृष्ण जैसे अनादिकालीन महासिद्ध जब किसी क्रिया को करना चाहते हैं तो उनकी वह क्रिया चिन्तनमात्र से ही अनायास हो जाती है। उनको किसी प्रकार की, किसी विशेष विधानपूर्वक कुछ साधना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, प्रत्युत उनके संकल्प में ही सकल शक्तियों का वास होता है। उनके चिन्तन मात्र से ही सब कार्य सिद्ध हो जाया करते हैं। श्रीकृष्ण का यह उदाहरण ऐतिहासिक उदाहरण है। मैं यहाँ वर्तमान समय में विद्यमान एक महापुरुष का उदाहरण दिये बिना नहीं रह सकता। वे महापुरुष बड़े उद्यमी और प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति हैं। एक सभा में वे गये हुए थे। आर्यसमाज की स्टेज थी। अन्तर्धान क्रिया पर वहाँ पर विवेचना हुई और अन्तर्धान क्रिया को गलत कहा गया। वे महापुरुष भी वहाँ मौजूद थे, उस समय उनका नाम था लाला खुशाल चन्द खुर्शन्द। मेरे विचार में सभी शिष्ट व्यक्ति लाला खुशालचन्द खुर्शन्द को जानते हैं। वे लाहौर के रहने वाले हैं और उन दिनों 'मिलाप' अखबार के एडीटर थे। उनसे पूछा गया–अन्तर्धान क्रिया के विषय में आपका क्या विचार है? महात्मा खुशालचन्द खुर्शन्द चुप रहे। बार–बार पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—"इस विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता जब तक साधना के आधार पर या किसी अनुभवी व्यक्ति द्वारा मैं इस क्रिया को स्वयं न देख लूँ।" उस दिन की उस स्टेज पर योग के दो सिद्धांतो का खण्डन किया गया था। पहला विषय था–योगी अन्तर्धान नहीं हो सकता और दूसरा विषय था–योगी का आसन जमीन से ऊपर उठ नहीं सकता, क्योंकि मनुष्य के शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से है। पृथ्वी उसे अपनी ओर आकर्षित किये रहती है। मिट्टी के ढेले को यदि आकाश में फेंका जाये तो वह आकाश में न रहकर लौटकर पृथ्वी पर ही आ गिरता है, आदि–आदि बातें बिना अनुभव के वहाँ एक उपदेशक ने कहीं। दोनों ही विषयों के संबंध में श्री खुशन्द जी से प्रश्न किया गया कि इस विषय में आप अपना मत बतलाइये। महात्मा खुशहालचन्द ने स्पष्ट उत्तर दिया कि–मैं तबतक इस विषय में कुछ नहीं कह सकता जब तक कि–मैं स्वयं न जान लूँ। महात्मा खुशहालचन्द खुर्शन्द अन्तर्धान क्रिया को देखने व जानने के लिए अति इच्छुक रहे। उन्होंने तीव्रतम तपश्चर्या एवं स्वाध्याय

करना आरम्भ कर दिया। हमारे योगशास्त्र का सिद्धान्त है – योगी स्वाध्याय के बल से इष्टदेव के दर्शन करता है। ऋषि–मुनि एवं देवता लोग उसकी आँखों के सामने आया करते हैं एवं उसको वरदान दिया करते हैं। इसी सिद्धान्त को सामने रखकर लाला खुशहालचन्द खुर्शन्द ने तीव्रतम तपश्चर्या एवं स्वाध्याय करना आरम्भ कर दिया। समय आने पर उन्होंने सन्यास ले लिया और अब वे महात्मा आनन्द स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

समय आने पर श्री आनन्द स्वामी ने कैलाश मानसरोवर आदि की यात्रा की। उसी यात्रा के संदर्भ में उन्हें एक सिद्ध योगिराज के दर्शन प्राप्त हुए। वे योगिराज रात के तीन बजे के लगभग उनके सामने प्रकट हुए और महात्मा जी के मस्तक में विभूति लगाकर दीक्षा–दीक्षा शब्द कहकर अन्तर्धान हो गये। महात्मा आनन्द स्वामी का यह पहला अवसर था जब कि उन्होंने अपनी तपश्चर्या एवं स्वाध्याय के परिणामस्वरूप इस प्रकार एक महापुरुष के दर्शन प्राप्त किये और अन्तर्धान क्रिया को भी आँखों के सामने देख लिया, तब उनकी लगन और दृढ़वती हो गयी। वे उसी समय अपने अभ्यास में बैठ गये। सूर्योदय होने के बाद उन्होंने वहाँ के वाशिन्दे पहाड़ी लोगों से पूछा कि क्या इस क्षेत्र में कोई सिद्ध योगिराज निवास करते हैं? उन लोगों ने उत्तर दिया – हाँ ! यहाँ से दो–तीन मील की दूरी पर एक महात्मा निवास करते हैं। वे गुफा में रहते हैं और उनकी गुफा के सामने लगभग दो सौ–तीन सौ मन का पत्थर लगा रहता है जिसको कोई हटा नहीं सकता। कभी–कभी जब वे महात्मा निकलते हैं तो अपने आप ही उस पत्थर को हटाया करते हैं। यदि कोई सांसारिक व्यक्ति उनके सामने जाये तो वे उसे पत्थरों से ही मारते हैं। महात्मा आनन्द स्वामी ने दृढ़ निश्चय कर लिया और महात्मा के दर्शनार्थ गुफा पर पहुँच गये। उनके पहुँचते ही उस महात्मा ने वह पत्थर हटा दिया। महात्मा आनन्द स्वामी अन्दर गये और यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए कि ये वही महापुरुष हैं जो रात के तीन बजे उन्हें दर्शन देकर एवं विभूति लगाकर दीक्षा दे गये थे। महात्मा आनन्द स्वामी ने उनके सामने अपने दोनों प्रश्न रखे—क्या योगी का आसन जमीन से ऊपर उठ जाया करता है? योगी ने उत्तर दिया—हाँ! मेरा आसन जमीन से ऊपर उठ जाया करता है। महात्मा आनन्द स्वामी ने कहा–क्या मैं इसको देखने का अधिकारी हूँ? महात्मा जी ने उत्तर दिया–हाँ! तुम अधिकारी हो, मैंने ही तुम्हें बुलाया है, तुम गौर से देखो मेरा आसन जमीन से ऊपर कैसे उठता है? यह कहकर वे पद्मासन लगाकर बैठ गये। भस्त्रिका प्राणायाम आरम्भ हुआ और शनैः–शनैः शरीर में कम्पन एवं कम्पन के बाद बादुरी वृत्ति हुई। इसके फलस्वरूप वे शनैः–शनैः जमीन से ऊपर उठने लगे एवं थोड़ी ही देर के बाद उनका सिर गुफा की छत से जा लगा। योगिराज आकाश में निराधार ठहरे रहे एवं थोड़ी ही देर के बाद शनैः–शनैः पूर्ववत् जमीन पर आकर बैठ गये।

महात्मा आनन्द स्वामी ने पूछा–यह क्रिया आपको कितने वर्षों में सिद्ध हो पायी है। उन्होंने उत्तर दिया– यह मेरे उन्नीस वर्षों के अभ्यास का परिणाम है। इसी प्रकार से श्री

आनन्द स्वामी ने उन्हीं महात्मा से पुनः अन्तर्धान क्रिया को देखा। अन्य बहुत–सी बातचीत करने के पश्चात् वे अपने स्थान को लौट आये।

महात्मा आनन्द स्वामी आजकल देहरादून के पास तपोवन में रहते हैं। यदि कोई सज्जन उनसे बात करना चाहे तो वे और भी स्पष्ट रूप से इन बातों को बतलायेंगे। बातचीत करना, बतलाना यह सब तो ठीक है ही, किन्तु इनसे भी उत्कृष्ट सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए साधक को चाहिए कि वह उद्यमी बने और अपने शास्त्रीय सिद्धांतों को अनुभूति में लाकर प्रयोगात्मक रूप से देखे, सत्य सिद्धांत उसके सामने आ जायेगा और यथार्थता को वह स्वयं जान जायेगा।

एक लक्ष्य अपनाओ। उस लक्ष्य को ही अपना जीवन कार्य समझो। हर क्षण उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो। उसी के सहारे जीवित रहो। मस्तिष्क माँसपेशियाँ नसें आदि शरीर के प्रत्येक अंग उसी विचार से ओतप्रोत हों और तब तक अन्य प्रत्येक विचार को किनारे पड़ा रहने दो। सफलता का यही राजमार्ग है, इसी मार्ग पर चलकर अब तक आध्यात्मिक महापुरुष पैदा हुए हैं। अन्यों को केवल बोलने वाले यंत्र समझो।

– स्वामी विवेकानन्द

पूज्य गुरुदेव

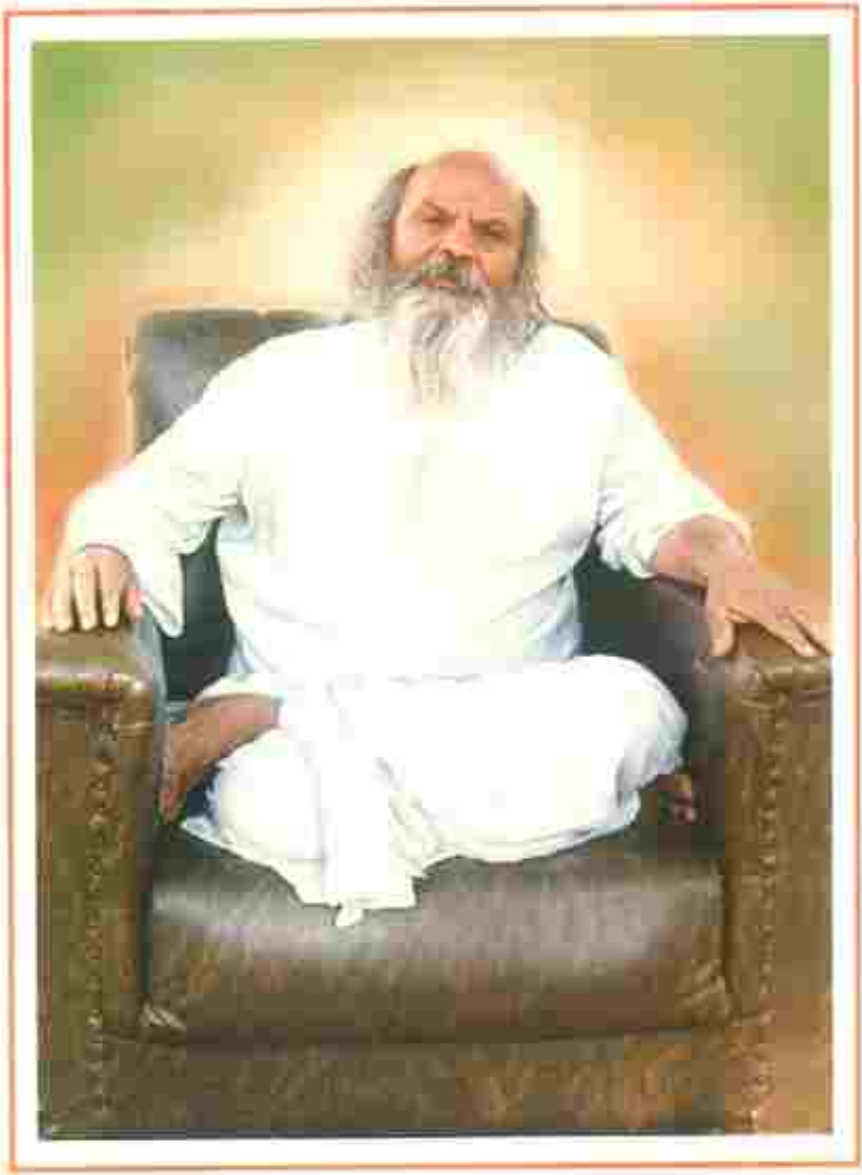

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

हमारे सद्गुरुदेव योगेश्वर

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

नित्य स्मरणीय अनन्त श्री योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज का अवनि मण्डल पर प्राकट्य सन् 1909 ई. में आश्विन शुक्ल दशमी को विजय दशमी के दिन हुआ। आपके पिता स्वनाम धन्य पं. देवीराम जी तथा माता चरती देवी हुई। योगिजन स्वेच्छा से जहाँ जन्म लेना चाहे वहाँ ले लेते हैं। पिछले जन्म में भी आप सिद्ध योगेश्वर के रूप में हिमालय की उपत्यका में रहा करते थे। कुछ योगी शिष्य भी आपके साथ रहा करते थे। शरीर जब अत्यन्त कृश हो चला तो आपने इसे त्यागने की इच्छा की। जीर्ण देह त्याग के पश्चात् आप आकाश मण्डल में सूक्ष्म रूप से इतस्ततः घूमने लगे और अन्त में अलुपुर गाँव में पं. देवीराम जी के गृह के आस-पास बड़ी तेजी से चक्कर लगाने लगे। इन सब घटनाओं का गुरुदेव ने "दिव्य जीवन दर्शन" नामक पुस्तिका में वर्णन किया है अन्यथा इन गोपनीय घटनाओं का शिष्य वर्ग को ज्ञान नहीं हो पाता। जन्म लेने के पश्चात् शैशव काल में ही आप आत्मतेज से व्याप्त रहते। पौर्व दैहिक संस्कारों के वशीभूत इस जन्म में बाल्यावस्था में ही प्राणधन जगदात्मा भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र के दर्शन होते ही रहते थे। यह एक विचित्र सी घटना है। इनके पिता पूर्णरूप से आर्य समाज के विचारों से ओत-प्रोत थे और एक अच्छे प्रचारक के रूप में देश के विभिन्न स्थानों पर प्रचार के लिए जाते थे। गुरुदेव के चाचा शिवनारायण जी भी ब्रह्मचारी वेश में रहते और आर्य विचारों के पोषक थे। पौराणिक बातों के अथवा अवतारवाद के ये लोग पक्षधर नहीं थे। किंतु सत्य कब तक छुपा रह सकता था? आप तो जन्म जन्मान्तर से ही भगवान् कृष्ण चन्द्र से तादात्म्य स्थापित महापुरुष हैं। आप भगवान् के साथ नाना विध क्रीड़ायें करते हुए आनन्दित रहा करते थे। रात्रि में शयनकाल के समय में शुभ्र प्रकाश सर्वत्र देखा करते थे। भगवान् के रूप सौन्दर्य का वर्णन अपनी माता जी से करते किंतु माँ इनकी बातों को समझ नहीं पाती थीं। दुर्दैव वशात् 10 वर्ष की अल्पायु में ही माता का वियोग सहना पड़ा। अब पिता जी ने इन्हें इनके ननिहाल भेज दिया। वहाँ निराणा गाँव में इनके मामा श्री रूपचन्द जी हैं वहाँ रहते रहे। मामा रूप चन्द जी आज भी जीवित हैं। वे गुरुदेव से एक डेढ़ वर्ष के बड़े हैं। उनकी आयु सौ वर्ष से अधिक हो चुकी है। इनके पिता श्री ने विद्याध्ययन के लिए पंजाब में कई अच्छे विद्यालयों में दाखिला कराया, किंतु सन्तोषजनक पढ़ाई नहीं हो पाई। अन्ततोगत्वा ये जब 14-15 वर्ष के थे तो पिता श्री ने पंजाब में लाहौर में श्री मद्दयानन्द ब्राह्म संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया जिसके प्राचार्य व संचालक श्री विश्वबन्धु जी थे। 3-4 वर्ष तक वहाँ अध्ययन किया। धारा प्रवाह संस्कृत संभाषण की योग्यता छोटी आयु में ही आ गई। परंतु संस्कारों का वेग बड़ा प्रबल होता है। आप

को रह-रह कर भगवान् कृष्ण चन्द्र की याद आने लगी और श्री वृन्दावन धाम के दर्शन की तीव्र लालसा उत्पन्न हो गई। परिणामतः आपने विद्यालय छोड़ दिया। आचार्य जी बिल्कुल नहीं चाहते थे कि आप विद्यालय छोड़ें, किंतु होनहार कुछ ऐसी ही थी। विद्यालय छोड़ देने के बाद आप श्री धाम वृन्दावन आ गये और भगवान की दिव्य लीला स्थलों के दर्शन करने लगे। इधर आपके चाचा पूज्य शिवनारायण जी आप को ढूँढते-ढूँढते वृन्दावन पहुँच गये और आपको वापस घर ले गये। पुनः अमृतसर में एक विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया। वैराग्य की पराकाष्ठा थी मन में। उन्हीं दिनों पास के गाँव के शिवालय में कई दिन के लिए यौगिक अनुष्ठान किया और आनन्दकन्द महाप्रभु जी के पगड़ी वेश में दर्शन हुए। कुछ दिनों के बाद ऋषिकेश का पता मिल गया और श्री प्रभुजी के साक्षात् दर्शन प्राप्त किये और योग दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा ग्रहण के पश्चात् प्रभुजी की आज्ञा पूर्वक श्री धाम वृन्दावन चले गये। जाते समय श्री प्रभुजी ने विशेष आज्ञा दी कि प्रातः 5 बजे से 7 बजे तक अवश्य ही ध्यानाभ्यास में बैठना। गुरुदेव ने इस आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में जो कुछ पाना था पा लिया। सकल सिद्धियाँ हस्तगत हो गई। महावाक्यों के अर्थ प्रकाशित हो गये। योग की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया। कभी-कभी गुरुदेव अपने श्री मुख से बतलाया करते थे कि प्रभुजी की कृपा से ऐसी कोई विभूति योग की नहीं है जिसका साक्षात्कार न कर लिया हो। श्री प्रभु जी ने योग दीक्षा देने की पूर्ण आज्ञा दे दी। मात्र 20 वर्ष की आयु में ही श्री प्रभु जी ने अपनी सारी अध्यात्म सम्पदा दे डाली। 1938 में श्री प्रभु जी के तिरोधान के पश्चात् श्री सिद्धगुफा सवांई आ गये। यहीं से ही योग पताका फहराने का संकल्प बनाया। गुरुदेव का मुखमण्डल साक्षात् काल जयी और कामजयी महादेव की भाँति आलौकित रहता था। उस समय के स्वरूप को जिन लोगों ने देखा है वे अवश्य इस बात को मान सकते हैं। गुरुदेव दाड़ी मूँछ उन दिनों नहीं रखते थे। वाणी में ओज और चेहरे पर तेज ऐसा झलकता था कि कोई नजर नहीं मिला सकता था। आप की कृपा दृष्टि जिधर भी घूम जाती थी उधर ही शिष्य की साधना मार्ग में हलचल हो जाती थी। किसी की भस्त्रिका चलती तो किसी की विभिन्न मुद्रायें व क्रियायें स्वतः होने लगती थी। बादुरी मुद्रा कुन्डलिनी उत्थान की क्रियायें घण्टों तक चलती थी। आपके ओजस्वी भाषण से बहुत अच्छे-अच्छे विद्वान एवं मनीषी आपके चरणों से जुड़ गये और आपके शिष्य बन गये। सन् 1950 से निरन्तर सिद्धगुफा पर भीड़ बढ़ने लगी। अध्यात्म पिपासु चारों ओर से आने लगे। आपने गाँव-गाँव नगर-नगर जाकर योग के विभिन्न अंगों का प्रचार किया। आपके वचनामृत का एक ही सार होता था कि योग अमर विद्या है इसे जीवन में अपना कर ही मानव परम् कल्याण के स्रोत तक पहुँच सकता है। गुरुदेव के यहाँ सिद्धान्त के साथ-साथ क्रियात्मक भी देखने को मिलता था। इसी कारण से जिज्ञासुओं की योग में आस्था बढ़ने लगी। सिद्धगुफा योग सिद्ध पीठ के रूप में प्रख्यात हो गया। दिल्ली में बड़े-बड़े सम्मेलनों में गुरुदेव की महनीय भूमिका रहती थी। योग प्रचार के व्यस्त कार्यक्रमों में भी जब भी थोड़ा समय मिलता उसे योग

साहित्य के सृजन में लगाया करते थे। योगियों के दिव्य चरित्र एवं घटनाओं का संग्रह पुस्तक के रूप में किया गया। यत्र-तत्र बिसरे योग के सिद्धान्तों को क्रमबद्ध बना कर 'योग सिद्धान्त' के नाम से दो खण्ड प्रकाशित किये। गुरुदेव का लक्ष्य रहा है कि उनका हर बच्चा योग के सिद्धान्त को यथार्थ रूप में समझे और अपने जीवन में आत्मसात् करे। योग के दुरुह सिद्धान्तों को अत्यन्त सरल भाषा में समझा कर इसे सर्वग्राह्य बनाया। साधक के अन्दर योग की दिव्यानुभूतियाँ गुरु की कृपा से स्वत: होती थी। ये अनुभूतियाँ ही योगी में अमृत के संचार की प्रक्रिया होती है। गुरुदेव ने प्रचीन सिद्धयोग की परम्परा को सजीव किया। सिद्धानुकम्पा से जो योग चलता है उसे ही 'सिद्धयोग' कहते हैं। गुरुदेव ने सिद्धयोग के सिद्धान्तों को साधकों तक पहुँचाने के लिए 1968 में 'सिद्धयोग' नामक पत्रिका का प्रकाशन कराया जो आज भी अबाध गति से चल रहा है। देश के विभिन्न स्थलों पर होने वाले योग सम्मेलनों में गुरुदेव ने अध्यक्ष पद को अलंकृत किया है। दिसम्बर 1986 में विश्वयोग सम्मेलन की अध्यक्षता गुरुदेव ने की थी। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने इन्हें 'योग शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत किया। उस योग सम्मेलन में योगियों के मध्य 'नक्षत्राणामहं शशी' नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा की उक्ति को चरितार्थ कर रहे थे।

गुरु गीता में सद्गुरु तत्व का निरूपण हुआ है। उसके अनुसार ही आपके शिष्य आप को शिव रूप में मानते हैं। आप अपने भक्तों की सदा रक्षा करते हैं। योग शक्ति सम्पन्न महापुरुष ही सर्वसमर्थ हुआ करते हैं। आपके लाखों शिष्य योग मार्ग पर आरूढ़ हैं और योग की विभिन्न भूमिकाओं को प्राप्त कर रहे हैं। आपके गुरुभाईयों में ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, योगिराज मुल्खराज जी महाराज, योगी नृसिंह मूर्ति, माता द्रोपदी जी, माता ऋषिदेवी हुए हैं। ये सब श्री प्रभुजी के विभूतिमान शिष्य हैं। इन्हीं के शिष्य प्रशिष्यों के द्वारा योग का प्रचार दुनिया में हो रहा है।

गुरुदेव की जन्म शताब्दी इस वर्ष 28 सितम्बर विजय दशमी के दिन खूब धूम-धाम से मनायी जा रही है। आपके स्थापित सभी आश्रमों में, गुरु शिष्य मण्डली अपने-अपने स्थानों पर सामूहिक उत्सव मना रहे हैं। सभी गुरु भक्तों में इस वर्ष अत्यन्त उल्लास व हर्ष है। इस पावन अवसर पर गुरुदेव के चरणों में कोटि-कोटि नमन है। जय गुरुदेव !

जो आत्मा का मुक्ति और परमात्मा की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा करता है, उसे कष्ट और उदासी के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता।

सद्गुरु रूप में स्वयं भगवान

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

योगेश्वर श्री चंद्रमोहन महाप्रभुजी ऐसे महान दिव्य व्यक्तित्व का नाम है जिन्होंने सब कुछ होते हुए भी अपने विषय में कोई प्रचार आदि नहीं किया सदैव अपने श्री मुख से यही कहते रहे कि सगुद पैकर भी होठ सूखे ही दिखाने चाहिए। उन्होंने अवतार पर्यन्त सदा वेष व सफेद धोती कुर्ता ही धारण किया। बढ़िया रंगीन वस्त्र, अलंकार, छाप, तिलक, सिंहासन आदि कुछ भी अपने लिए नहीं रखा। यहाँ तक कि यातायात के लिए एक वाहन तक भी अपने पास आश्रम में नहीं रखा। टेलीफोन जैसी आवश्यक वस्तु भी उनके सामने आश्रम में कभी नहीं रही। श्री सिद्धगुफा आश्रम भी प्राचीन गुरुकुल जैसा ही बनाया उसमें बाहरी चमक-दमक और सुविधायें न के बराबर है। आधुनिकता से भरे युग में आज भी वह एक श्रेष्ठ गुरु आश्रम की मर्यादा को बनाये हुए है। योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी परम सादगी में एक परम दिव्य सर्वशक्ति से विभूषित महान व्यक्तित्व रहे जो कुसुम अकुसुम शक्ति वाले होकर भी सारा श्रेय अपने परम सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज को ही देते रहे इससे उनके श्रेष्ठ गुरु भक्त होने का पता चलता है। योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी ने कभी अपने मान सम्मान की चिंता नहीं की उन्होंने अपने सभी बड़े गुरु भाई बहिनों में विशेष सम्मान और छोटे गुरुभाई बहिनों में विशेष स्नेह के भाव सदैव रखे। ऐसे परम सिद्ध पुरुष योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी का उनके एक सौ वें जन्म दिवस यानि जन्म शताब्दी महापर्व पर थोड़ा सा विवरण यहाँ देने का प्रयास किया है। आशा है श्रद्धालु भक्त जन अपने प्यारे सद्गुरुदेव के विषय में थोड़े कहे को अधिक समझ हृदय में आत्मसात करेंगे।

दिव्य प्रादुर्भाव– गण्डकी नदी नेपाल में यह पूर्व जन्म में भी एक सिद्धपुरुष थे। श्री रामलाल महाप्रभु जी के संकेत से शरीर त्यागकर तेजामयि ब्रह्म रूप में माता चलती देवी एवं पिता श्री देवी रामजी के घर में विजयादशमी सन् 1909 को अलुपुर में अवतार धारण किया। जन्म से पूर्व ही उन्होंने अपने पिता से वार्तालाप किया और जन्म लेते ही उनके साथ भगवान श्री कृष्ण बालरूप में क्रीड़ायें करते रहे। जन्म से ही उन्हें सब वर्णाक्षरी का ज्ञान बिना किसी विद्यालय में गये ही था।

परिपूर्ण सद्गुरु की प्राप्ति– सिद्धों के महासिद्धेश्वर, योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी को सद्गुरुदेव के रूप में प्राप्त किया। महाप्रभु श्री रामलाल जी ऐसे परिपूर्ण विलक्षण सद्गुरु है जिनका संसार में आना और फिर संसारी जीवों को अपनाना दोनों ही अति आश्चर्यमय कार्य है। उनकी एक दृष्टि जिसके ऊपर भी पड़ गई वह ही दिव्य शक्ति प्राप्त

कर संसार को प्रकाश देने वाला बन गया। आध्यात्मिक जगत में आज जितने भी प्रकाश के दाता हैं उनमें से अधिकांशत: श्री रामलाल महाप्रभुजी से ही प्रकाशित हैं–

गुरुमंत्र व दीक्षा– महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने श्री चंद्रमोहन जी महाराज को अति विलक्षण गुरुमन्त्र गुरु दीक्षा में प्रदान किया जो कान में पड़ते ही तत्काल समाधि प्रदान करने वाला था और जो श्री रामलाल महाप्रभुजी ने अपने अन्य शिष्यों में से किसी को भी नहीं दिया था और विधिवत योग दीक्षा भी श्री रामलाल महाप्रभु जी ने योग साधन आश्रम ऋषिकेश में श्री चंद्रमोहन जी को ही प्रदान की थी।

दीक्षा देने का वरदान– पूर्व जन्म के ही सिद्ध पुरुष होने के कारण से एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी की असीम कृपा से इन्होंने अति शीघ्रता से योग की ऊँचाईयों को प्राप्त कर लिया इसलिए श्री रामलाल महाप्रभु जी ने श्री चन्द्रमोहन जी को लगभग 20 वर्ष की आयु में ही मात्र जीवों को योग दीक्षा देने का महान अधिकार प्रदान किया था और अपना स्वरूप प्रदान करके यह वरदान अति कृपा करके दिया कि तुम किसी को एक बूंद शक्ति दोगे तो तुम्हारी तत्काल सौ बूंद शक्ति बढ़ जायेगी।

परिपूर्ण सुयोग्य व्यक्तित्व– पूर्व जन्म से ही सिद्धयोगिराज रहे महाप्रभु श्री चंद्रमोहन जी ने योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी की शरण प्राप्त करके सिद्धयोग साधनों को प्राप्त किया और दिन प्रतिदिन उन्नति करते–करते आप एक समाधि दाता सिद्धयोगि के रूप में जगत में प्रतिष्ठित हो गये। आपने अनेकों वन प्रदेशों में भारी तपस्यायें की। हिमालय में गुप्त यौगिक साधनों को यहाँ मानव बस्तियों में लाकर सामान्य जनों को भी सुलभ करा दिये जिन यौगिक साधनों को पहले पुस्तकों का विषय समझा जाता था उनको प्रत्यक्ष करा करके जीवों में योग के प्रति रुचि पैदा की और घर गृहस्थी में ही बड़े–बड़े ध्यानी साधक तैयार कर दिये। ऐसे लोगों ने बड़े–बड़े सत्संग मण्डलों का संचालन करके लाखों जीवों को योग मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। यह सब श्री चंद्रमोहन महाप्रभु के शक्तिदाता अमोघ संकल्प से ही संभव हुआ। जिससे जगत में योग की धूम मच गई।

सद्गुरु पद पर आसीन– योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी ने महायोगिराज श्री चंद्रमोहन जी के रूप में सिद्धयोग विद्या में पूर्ण पारंगत, परम ज्ञानी, परम तपस्वी एवं सर्वगुण सम्पन्न एक महान शिष्य प्राप्त किया। श्री रामलाल महाप्रभु जी ने अपने पूर्ण योग्य शिष्य को अपनी समस्त यौगिक शक्ति एवं दिव्य सिद्ध संपदा का पूर्ण अधिकारी बनाया और अपने सबसे पहले योग आश्रम गुरु का बाग संवाई धाम की सिद्ध गद्दी पर स्वेच्छा से आसीन कर दिया। श्री रामलाल महाप्रभु जी का यह सिद्ध संकल्प उस समय सामने आया जिस समय हरिद्वार में संवाई के लोगों को स्नान करते देख स्वामी मुलखराज जी ने ज्यों ही उनसे मिलना चाहा तो श्री रामलाल महाप्रभुजी ने स्वामी मुलखराज जी पर क्रोधित होकर कहा कि चलो यहाँ से और कहा कि तुम लोग जिनसे मिलना चाहते हो यह कार्य तुम्हारे द्वारा नहीं होगा यह कार्य

जिसके द्वारा होगा अभी तो वह भी हमारी शरण नहीं आया है जब वह आयेगा उसके द्वारा यह सभी जीव प्रभु के शरणागत होंगे। श्री रामलाल महाप्रभुजी ने पहले से ही श्री चन्द्रमोहन जी का कार्य और कार्य क्षेत्र निश्चित कर रखा था। समय आने पर सारा कार्य महाप्रभु श्री चंद्रमोहन जी ने श्री सिद्धगुफा पर योग प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना करके सवाई की पावन भूमि से प्रारम्भ किया और जगत में योग की जगमगाहट फैला दी और अपना सारा जीवन अपने सद्गुरुदेव की पावन स्मृति को जग प्रसिद्ध बनाने में ही लगा दिया।

योग प्रचार की धूम– श्री रामलाल महाप्रभुजी की पवित्र गुफा का नाम श्री सिद्धागुफा रख कर उनकी पावन स्मृति के उत्थान के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। जंगल में स्थापित तीन बीघे का बाग प्यारे लाल कुलश्रेष्ठ जो जाति से कायस्थ थे उनका था। उसमें गुफा का निर्माण किया गया था। महाप्रभु श्री चंद्रमोहन जी ने रात दिन मेहनत करके जंगल में मंगल कर दिया और एक भव्य सिद्ध आश्रम का निर्माण किया और रात दिन के भारी परिश्रम से उसे विशाल रूप प्रदान किया और विश्व विख्यात बनाया। आज महाप्रभु श्री रामलाल जी के जितने भी अनुयायियों ने देश–विदेश में जहाँ भी जितने आश्रम बनाये हैं उन सबमें भव्य और दिव्य आश्रम श्री सिद्धगुफा सवाई धाम है। इसमें आने वाले श्रद्धालुजन दस बारह लाख की संख्या से अधिक हैं। भक्तों की इतनी अधिक संख्या श्री रामलाल जी के किसी अन्य आश्रम पर नहीं है। इसका भी एक कारण है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने योगिराज श्री चंद्रमोहन जी महाराज को कुआँ पर बैठ जल पिलाया था और अपने हाथ का बर्तन इन्हें ही प्रदान कर लोगों को जल पिलाने का आदेश दिया था और जब श्री चंद्रमोहन जी महाराज ने जल पिलाना आरम्भ किया तो भारी भीड़ इनसे जल पीने के लिए उमड़ पड़ी यह भीड़ का नजारा श्री महाप्रभु जी ने श्री चंद्रमोहन जी को पहले ही दिखा दिया था।

लाखों लोगों में योग का प्रचार– महाप्रभु श्री रामलाल जी के सिद्धयोग के प्रचार–प्रसार का कार्य जितने बड़े पैमाने पर योगेश्वर श्री चंद्रमोहन महाप्रभु जी ने किया उतने बड़े पैमाने पर श्री महाप्रभुजी के अन्य शिष्यों से नहीं हो सका। यह बिल्कुल सत्य है इसमें कोई द्वेष वाली बात नहीं। जितना बड़ा श्री महाप्रभुजी का कार्य योगेश्वर श्री चंद्रमोहन जी ने किया उतना बड़ा कार्य श्री मुलखराज जी श्री पारस नाथ जी, श्री नरसिंह नूतीं जी, माता द्रौपदी जी, महात्मा ऋषि देवी जी आदि सब मिलकर भी नहीं कर पाये। यह तुलना किसी द्वेष भाव से नहीं बल्कि मात्र श्री चंद्रमोहन जी के किये गये विशाल कार्य को समझाने मात्र के लिए ही दी गई है। सन् 1990 तक ही योगेश्वर श्री चंद्रमोहन जी के 10, 12 लाख शिष्य हो चुके थे अब तो न जाने यह संख्या कहाँ पहुँच गई होगी। क्योंकि इस समय श्री सिद्धगुफा के अनेक योग आचार्य योग प्रचार कर रहे हैं। हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि श्री रामलाल महाप्रभु जी का इस विशाल योग प्रचार का संकल्प योगेश्वर श्री चंद्रमोहन महाप्रभुजी के लिए ही था और योगेश्वर श्री चंद्रमोहन जी को अपनी पूरी योग शक्ति का स्वामी बनाया था जहाँ स्वामी मुलखराज जी को यह कहा था

कि हम तुम्हारे हृदय में बैठ कर सब कार्य करते रहेंगे। तभी योगेश्वर श्री चंद्रमोहन जी को ऋषिकेश में अपना धोती कुर्ता पहना कर अपना रूप ही बना दिया साथ ही यह वरदान दे दिया और स्वतन्त्र कर दिया कि अब जो भी संसार में करना चाहो करते रहो हमारी पूर्ण आज्ञा है।

महाप्रभु जी एवं उनके शिष्यों पर साहित्य रचना– परम विद्वान योगेश्वर श्री चंद्रमोहन जी ने श्री रामलाल महाप्रभुजी पर ऐसे उत्तम साहित्य की रचना की जिससे जीव उनको तत्वत: जान सके। श्री महाप्रभु जी के विषय में जितना अच्छा और सैद्धान्तिक ढंग से बताया उतना अच्छा कोई अन्य शिष्य नहीं कर सके। योगेश्वर श्री चंद्रमोहन जी द्वारा दी गई जानकारी अधिक विस्तृत, सर्वमान्य, सैद्धान्तिक एवं प्रमाणिक है। अपने बड़े गुरुभाईयों में वह अति सम्मान एवं छोटे गुरु भाईबहिनों में विशेष स्नेह रखते थे इसलिए इनके पास सभी बड़े एवं छोटे गुरु भाई बहिनों का बराबर आना बना रहता था। अपने बड़े व छोटे गुरु भाई बहिनों एवं उनकी यौगिक उपलब्धियों पर ग्रन्थ लिखे। गोपालानंद जी पर 'ब्रह्मचारी गोपालानंद एवं उनके ध्यान अनुभव' स्वामी मुलखराज जी पर 'योगिराज मुलखराज जी' महात्मा ऋषिदेवी, माता द्रौपदी देवी, रामरती, बिजना, शलमा आदि पर 'समाधिस्था योगिनियाँ।' हरिहरानंद जी, अमरनाथ जी, नारायणदास जी खेचर सिद्ध, रतन लाल जी आदि योगियों पर आठ योगी नामक ग्रन्थ लिखा।

योग सिद्धान्तों पर साहित्य रचना– योग जैसे गूढ़ विषय पर योगेश्वर श्री चंद्रमोहन जी ने अनेक ग्रन्थ लिखे दुर्लभ योगासनों की एक उत्तम पुस्तक शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार लिखी, प्राणायाम, बन्ध एवं मुद्रा षटकर्म आदि की जानकारी, जीवन तत्व साधन का पूर्ण विवरण। योग सिद्धान्त दो भागों में जो अति दुर्लभ ग्रन्थ है, सिद्धयोग मासिक पत्रिका आदि यह समस्त रचनायें उनकी अपनी योगानुभूतियों एवं योग्यता पर आधारित है। उन्होंने अपनी योग्यता के बल पर इन साहित्यों की रचना की है जहाँ अन्य योगियों ने बाह्य योग की बात की है वहीं इन्होंने अपने साहित्य में अंतरंग योग की ऊंचाईयों समाधि की सारी अवस्थायें अष्ट सिद्धियाँ, कुण्डलनी जागरण, षटचक्र भेदन एवं सिद्धयोग का पूरा–पूरा परिचय दिया है। सिद्धयोग के अन्तर्गत कैसे जीव तपस्या करते–करते सिद्धों की कृपा का भाजन बन जाता है उसे सिद्धों की कृपा से सारे योग साधन स्वमेव होने लगते हैं और वह सहज ही कैवल्य की प्राप्ती कर सकता है।

शक्तिपात कर्ता के रूप में– सिद्धयोग में पूर्ण पारंगत महान सिद्ध पुरुष योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी का प्रत्येक कार्य दिव्य योग शक्ति से युक्त होता था चाहे वह किसी को पुष्प प्रसाद दे रहे हों या किसी को आशीर्वाद दे रहे हों या फल दे रहे हों या कोई योग क्रिया करा रहे हों सभी कार्य दिव्य शक्ति से भरे होते थे। अनेक श्रद्धालुभक्त सदैव इस बात को भी कहते रहते थे कि हे गुरुदेव हमारा ध्यान लग जाये आप ऐसा प्रसाद दीजिए तब श्री सद्गुरु देव चंद्रमोहन जी उनको तीव्र शक्तिपात करके विशेष पुष्प प्रसाद देते थे तो भक्तों की कई–कई

घंटे समाधि लग जाया करती थी। ऐसे में वह जीव परम दिव्यानंद को प्राप्त करते थे और कुछ जीव देवी देवताओं श्री राम कृष्ण श्री महाप्रभुजी आदि के दर्शन लाभ करते थे। लाइलाज रोगों में तीव्र शक्तिपात देकर रोगियों को निरोग करना उनके लिए नित्यप्रति का खेल था। श्री महाप्रभुजी के दरबार में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उन्होंने किसी न किसी रूप में शक्तिपात की दौलत देकर निहाल किया है खाली किसी को नहीं छोड़ा। यह अलग बात है कि जिन लोगों ने उनके दिये शक्तिपात को सम्हाल कर रखा है उनमें चमक आज भी है और जिन्होंने सम्हाल कर नहीं रखा वह कभी समझ ही नहीं पाये कि हमें कितने सर्वशक्तिमान महाप्रभु मिले और उन्होंने हमें कितनी बड़ी शक्ति दी जो प्रमाद में ऐसे ही खो दी।

शक्तिपातं कृत्वा आत्मदर्शकः सिद्धशिरोमणि।
परिपूर्ण सिद्धेश्वरः चन्द्रमोहन भगवते नमो नमः।।

विश्व विख्यात योगेश्वर– दिव्य शक्तिपात कर्त्ता योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के दिव्य शक्ति से भरे विलक्षण कार्य जो चमत्कार बन कर लोगों के सामने आ रहे थे उनसे इनकी प्रसिद्धि दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। देश के साथ–साथ विदेश के लोगों ने भी दिव्य शक्ति से भरे उनके चमत्कारों को अपनी नजरों से देखा, समझा और बाद में उनके अनुयायी ही हो गये। योगेश्वर श्री चंद्रमोहन महाप्रभुजी से शक्तिपात लेकर वह अपने–अपने देशों में योग के प्रचारक बने। दुनिया के अनेक देशों में श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के दीक्षित एवं शक्तिपात किये गये शिष्य योग का कार्य कर रहे हैं। देने वाले दाता योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी ही है। उन्होंने किसी को रोग के बहाने बुलाकर दिया, किसी को भक्ति के बहाने, किसी को योग साधन के बहाने, न जाने किस–किस को किस–किस बहाने से जीवों में सिद्धयोग का दान दिया। जिससे उनकी ख्याति देश–विदेश में महान योग योगेश्वर के रूप में सर्वत्र हो गई।

सम्मानित महान व्यक्तित्व– योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के प्रादुर्भाव काल में अनेक ऐसे अवसर आये जब लोगों ने उनकी विद्वत्ता एवं अलौकिक शक्ति युक्त कार्यों को देखा उनके इन अलौकिक कार्यों से अभिभूत होकर अनेक बार उनको सम्मानित किया गया। काशी विद्वत्त परिषद् वाराणसी, प्रयाग में माघ मेले के अवसर पर योगिराज देवरहा बाबा जी द्वारा कुम्भ मेले में और सन् 1986 में विज्ञान भवन नई दिल्ली में आयोजित विश्व योग सम्मेलन में **योग शिरोमणि** की उपाधि से राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह द्वारा सम्मानित किया गया। अनेक महान सन्त इनकी योग्यता के कारण से इनको बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे। गोरक्ष पीठ के महंत अवैद्यनाथ जी प्रयाग वाले प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, अखण्डा नन्द जी चित्रकूट वाले, देवरहा बाबाजी, रामानंदाचार्य जी, रामभद्रा चार्य जी, शंकराचार्य जी आदि संक्षेप में ही।

विभूतियों से विभूषित महान व्यक्तित्व– सिद्धयोग विद्या में पूर्ण पारंगत सकल योग

ऐश्वर्य से विभूषित योगेश्वर श्री चंद्रमोहन महाप्रभु जी योग की समस्त विभूतियों का प्रत्यक्ष उदाहरण रहे। उनमें योग की समस्त विभूतियों का दर्शन जीवों को होता था। सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी कहते थे कि श्री रामलाल महाप्रभुजी ने योग दर्शन विभूतिपाद में जितनी बातों का जिक्र आया है उन सबका साक्षात्कार हमें कराया है। वह त्रिलोकी में जो चाहते रहे वह करते रहे प्रकृति पर उनका पूर्ण अधिकार था। अणिमा, लंघिमा, गरिमा, महिमा आदि सिद्धियाँ उनकी अपनी थीं परंतु उन्होंने प्रायः इनका प्रदर्शन नहीं किया। जल के अन्दर समाधि भी उन्होंने अनेक बार लगाई। एक समय में अनेक स्थानों पर भी प्रकट हो गये। मृतक जीवों को भी प्राणदान दिया। चलती हुई रेलगाड़ी को अपने अमोघ सिद्ध संकल्प से तुरंत रोक दिया और कार्य हो जाने पर पुनः उसी स्पीड से चला दिया।

संकल्प सिद्ध महायोगी– योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के सिद्ध संकल्प से त्रिलोकी में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं थी जो संभव न हो वह कुर्तुमअकुर्तुम सर्वशक्ति वाली अवस्था में सदैव रहते थे, वह जो चाहते थे तत्काल हो जाता था। ऐसी सामर्थ्य उनके पास थी उनके संकल्प करने की देर होती थी वह जो चाहते थे वह ही होता था। योग दर्शन कहता है– 'सत्यप्रतिष्ठायां–क्रिया फलाश्रुत्वम' सत्य में पूर्ण रूप से जो व्यक्ति अवस्थित होता है उसका संकल्प भी सत्य हो जाता है वह जो भी इच्छा करता है उसे प्राप्त हो जाता है। उन्होंने अपने सिद्ध सत्य संकल्प से दुनिया के जीवों का बहुत कल्याण किया जिसके पुत्र नहीं था पुत्र दिया, जिसके औलाद नहीं होती थी औलाद दी जिसका कारोबार नहीं था कारोबार दिया, नौकरी नहीं थी नौकरी दी, जिसका विवाह नहीं होता था विवाह कराया, जिसको रोग था रोग दूर किया, आध्यात्मिक पिपासुओं को सिद्धयोग शक्तिसंचार देकर आध्यात्मिक तृप्ति दी और उनको आध्यात्मिक ऊँचाईयों तक पहुँचाया, अर्थी पर पड़े मृतक जीवों तक को जीवनदान दे डाला आदि।

योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की दिव्य लीलाओं का गायन व लेखन करते–करते यदि हम अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दें तो भी उनकी लीलाओं को बयान नहीं किया जा सकता। अति संक्षेप में ही सही हमने जो उनकी लीलाओं का वर्णन किया है उससे प्यारे सद्गुरुदेव की योग्यता को पाठक जन कुछ समझ सकें, उनके श्री चरणों में पूर्ण समर्पित हो सकें बस इसलिए ही हमने यह प्रयास किया।

कामाख्या की यात्रा में सत्संग लाभ

डा. विजय सिंह, गोरखपुर

बचपन से लेकर मृत्यु तक जीव की जीवन–यात्रा चलती रहती है। मृत्यु के पश्चात् भी जीव की यात्रा समाप्त नहीं होती। महायात्रा गतिमान रहती है। स्वरूप साक्षात्कार कहें अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर से जब जीव पूर्णतः मुक्त होता है तभी यह महायात्रा समाप्त होती है।

बुद्ध ने कहा– हे गृहकारक अब मैं तुझे जान लिया है अब तू नया गृह का निर्माण नहीं कर सकता। निर्वाण प्राप्ति, सुप्रज्ञा जागृत होने पर महात्मा बुद्ध ने स्वयं को स्वयं से सम्बोध किया था।

गत वर्ष गरमियों में गोहाटी जाने का सौभाग्य मिला। यात्रा बहुत आनन्द एवं सद्गुरु कृपा एवं अहो भाव से पूर्ण रहा। तेज रफ्तार से ट्रेन पूर्व दिशा की ओर भागी जा रही थी। खेत, जंगल, गाँव, वियावान सभी तेजी से पीछे छूटते जा रहे थे।

मेरे मन में रह–रह कर कामाख्या–शक्ति पीठ के बारे में पढ़े संदर्भ मन में सहज उठ रहे थे। तांत्रिकों का पीठ, योगियों की शक्ति साधना स्थली। कामरूप की अद्भुत अलौकिक कथायें। भगवान माया मच्छेन्द्र नाथ के भोग–विलास की लीला भूमि, जहाँ से बाबा गोरक्षनाथ ने "जाग मछेन्दर गोरख आया" का अलख जगा कर, सबको योग ऐश्वर्य से पराभूत कर अपने गुरुदेव को भोग–भूमि से मुक्त कराकर कदली बन की ओर प्रस्थान किये थे। यह सब कथायें श्री सद्गुरु परम प्रभु के मुखार विन्द से सुना था अतः चिन्तन की धारणा से चित्त पटल पर साकार होते जा रहे थे।

गोहाटी का फाँसी बाजार। दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी के वन तीर्थ आसाम की यात्रा विवरण न जाने कब मन में उभरने लगा। फाँसी बाजार का वर्णन। चन्द्रपुर, मयं गाँव, तांत्रिकों के उत्पात व परम प्रभु द्वारा उन सब का समन की कथा। कृष्णानन्द एवं मुखराम जी द्वारा सद्गुरु महाप्रभु जी की साहस पूर्ण सेवा कथा। राजा रणसिंग तांत्रिकों का अधिराज था, उसने पूरी रात साधारण मानव समझ कर महाप्रभु जी पर अपने सारे तांत्रिक शक्तियों का प्रयोग कर हार गया। अन्त में शक्तिहीन होकर दीनता पूर्वक श्री महाप्रभु जी के शरणागत हुआ। इन्हीं सब विचार मनः चक्षु के सामने साकार होकर अन्तः करण को सुख दे रहे थे। तभी एक व्यवधान हुआ। सामने के बर्थ पर बैठे सम्भ्रान्त व्यक्ति ने पूछा– आपको कहाँ तक जाना है? "गोहाटी" संक्षिप्त, उत्तर देकर मैं मौन हो गया और पुनः मन को उन दिव्य यादों में ले जाने के लिए उद्यम करने लगा। परंतु तत्काल सफलता नहीं मिलने पर खिड़की से बाहर 'पल–पल' बदलते नजारों को देखने लगा। ताड़ के पेड़ कतार में तपस्वियों की तरह खड़े तो कहीं बांसों के

झुरमुट तेजी से अलोप होते जा रहे थे।

सामने बैठे सहयात्री को पूरी दृष्टि से मैंने देखा–खादी का धोती, गर्द का कुर्ता, गले में रुद्राक्ष की मोटी माला। स्वस्थ, उम्र में मुझसे अधिक यही सत्तर के आस–पास। उन्नत–ललाट, उन महाशय के नेत्र आकर्षक और उसमें बौद्धिकता की एक चमक मुझे आभास हुआ।

मैंने परिचय हेतु पूछा–आपका गन्तव्य कहाँ तक है। उन्होंने कहा–गोहाटी से एक स्टेशन पहले कामाख्या। शक्ति–पीठ के नाम के साथ उनके स्वर में भावयुक्त श्रद्धा का परिचय मिला।

उन्होंने प्रति प्रश्न किया– क्या आपकी अभिरुचि अध्यात्म में है? अचानक इस प्रश्न से मैं थोड़ा सचेत हुआ और उत्तर में मैं अपने सिर को स्वीकारोक्ति में हिलाया।

वे मुझे गौर से देखते रहे फिर बोले– इस कलिकाल में बिना सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त किये व्यक्ति का अन्तर जगत में प्रवेश पाना असम्भव है।

अब मुझे उन महाशय से बात करने में आनन्द का अनुभव हो रहा था। अतः मैं कहा– इस अर्थ में मैं बड़ा नागी हूँ। बहुत पहले ही समर्थ सद्गुरु देव से शक्ति–पात दीक्षा एवं मंत्र मुझे प्राप्त हो चुका है। उनकी करुणा–कृपा से इस अपात्र की जीवन–धारा को इस छोर तक ले आया है। जो भी लौकिक पारलौकिक उपलब्धि है वह उन सद्गुरु के कारण है।

वे गौर से पुनः मुझे देखते रहे। कुछ अन्तराल बाद बोले–सद्गुरुदेव अपने शिष्य को सब कुछ देना चाहते हैं। परंतु शिष्य के पात्रता का भी अर्थ है। मन में मैं सोचने लगा इस व्यक्ति के बातों में सार है। स्वयं सद्गुरु भगवान कहते थे – सिंहनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही ठहरता है। प्रगटतः मैं पूछा– शिष्य में पात्रता का विकास कैसे होगा? वे बोले– गुरु प्रदत्त मंत्र, गुरु सामर्थ्य चिंतन को अपना आधार बनाकर साधना करते जाना चाहिए। साथ ही शिष्य को अपने शुभ कर्मों का विकास तथा खोटे कर्मों के प्रति सचेष्ट होना चाहिए। पाप कर्म से नरक गति, एवं पुण्य कर्मों से स्वर्ग की प्राप्ति निश्चित है। नरक भोग से पाप क्षीण होने पर फिर मानव शरीर मिलता है। इसी प्रकार पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से भूतल पर पुनः जन्म लेना पड़ता है। यही आवागमन का चक्र है।

बातचीत को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा– इस आवागमन से छुटकारा बिना आत्म दर्शन के कैसे सम्भव है?

वे बोले यह तो है ही। अनेक जन्म संसिद्धि:। परंतु समर्थ सद्गुरुदेव अपने शिष्यों के सम–विषम संस्कारों को मिटाते ही रहते हैं। सारी साधना, प्रथमतः अन्नमयकोष की शुद्धि से प्रारम्भ होती है। मंत्र जप से, प्राण कर्म से, यम–नियमों के पालन अथवा आसनादि सिद्धि से घटाकाश का महान अंधकार शिथिल होता है। अन्नमयकोशों में व्याप्त प्राण का बोध साधक को

ध्यान करते समय देहभाव भूलने पर अपने आप होता है। जब साधक प्राणमय-कोश का पूरा-पूरा साक्षात्कार कर रहा होता है, उस समय उसे अपने स्थूल शरीर का भान नहीं के बराबर होता है। ऐसी प्रगाढ़ता में विज्ञानमय-कोश के अद्‌भुत व्यापार का दर्शन होना शुरू होता है। साधक अब मन: स्तत्व के सामर्थ्य से धीरे-धीरे सद्‌गुरु कृपा से परिचित होता है। वे महानुभाव अब चुप होकर ट्रेन की खिड़की से बाहर एक टक देखने लगे थे। मेरी उपस्थिति मानो उनके लिए उस काल में है ही नहीं।

मैं अनुमान लगा रहा था मन ही मन यह महानुभाव निश्चित ही योग मार्ग में पहुँचे हुए साधक हैं। अन्यथा योग रहस्यों को इस तरह प्रकट करना सामान्य शास्त्र ज्ञान से सम्भव कदापि नहीं है।

मैंने विनम्रता पूर्वक पूछा- यह सब आपका शास्त्रीय अध्ययन ज्ञान है या स्वानुभूति।

वे स्मितहास के साथ बोले- आपको क्या लगता है?

मैंने कहा देखिए- हम पूर्व में ही बता चुके हैं कि मुझे सर्वसिद्ध समर्थ सद्‌गुरु देव से योग दीक्षा सन् 1967 में मिला परंतु साधना शिथिलता के कारण केवल सद्‌गुरु कृपा से होने वाले दिव्यानुभूतियों के सिवाय योग-दर्शन प्रणीत साक्षात्कार नहीं हुआ है।

मन्द मुस्कान के साथ बोले- आप सच में बड़े भाग्यशाली हैं। आप पर नित्य सिद्ध सद्‌गुरु की कृपा है ही। उनकी कृपा से ही अब तक भोग एवं आध्यात्म दोनों का लाभ उठाते रहे हैं। अब आप हमें बतायेंगे कि आप के श्री गुरुदेव कौन हैं?

हमने संक्षेप में उन्हें सिद्धगुफा का परिचय देते हुए दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी प्रतिपल स्मरणीय श्री गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी का परिचय तथा विश्व में योग प्रसार के मूल प्रेरक स्वरूप पर कुछ घटनाओं की चर्चा किया। जिस समय मैं यह सब उन्हें बता रहा था। वे नेत्र बन्द किये हुए तन्मयता से मेरी बातों को सुनते रहे।

बड़े स्नेह दृष्टि से मुझे देखते हुए बोले- तभी तो कहूँ! क्यों हठात मुझे आपसे बात करने की इच्छा हुई। आप परम योगीराज जी के शिष्य हैं। कुछ गणना करते हुए बोले, शायद 1977 में योगिराज जी के बारे में धर्मयुग में कुछ आलेख पढ़े थे। उसमें गुफा का परिचय एवं श्री योगिराज जी का स्वरूप प्रकाशित था। स्वास्थ्य मंत्री श्री राजनारायण जी पर तिहाड़ जेल में पत्र के माध्यम से ही उन्होंने कृपा-दान किया था। यदि मैं विस्मरण नहीं कर रहा हूँ तो श्री राजनारायण जी को खुली आँखों भगवती जगत जननी अम्बा का दर्शन हुआ था। पश्चात् वे तिहाड़ जेल से छुटकर माननीया इन्दिरा गाँधी जी के खिलाफ इलेक्शन लड़कर चमत्कारिक ढंग से जीते थे।

मैं उन्हें उनके पढ़े हुए वृत्तान्त को विस्तार से बताया। कैसे राजनारायण जी जेल से छुटते ही श्री सिद्धगुफा आये और सर्वप्रथम श्री गुरुदेव भगवान का दर्शन कर अपना परिचय

दिया और इलेक्शन में विजय हेतु कृपा प्रसाद की याचना किया था। श्री गुरुभगवान ने उन्हें उत्साह पूर्वक इलेक्शन लड़ने की बात कहते हुए बोले–जाओ! जीत कर आना। आगे उनकी दीक्षा। मंत्रिमण्डल में न शामिल होने पर श्री मुरार जी देसाई द्वारा गुरुदेव जी से प्रार्थना करना कि आप अपने शिष्य को आदेश दें कि वह मंत्रिमण्डल में सम्मलित हो जायें। गुरु आदेश पाकर ही, वे मन से मंत्रिमण्डल में स्वास्थ्य मंत्री बनने की घटना से लेकर उनकी दिव्यानुभूतियाँ तथा मृत्युकाल में सद्गुरुदेव जी की कृपा–शक्ति संचार की सारी बातें मैं बताता रहा।

वे मुग्धभाव से सुनते रहे। थोड़े अन्तराल के बाद बोले– ईश्वर की कृपा से ऐसे सुयोग मिलते हैं। जन्म–जन्मान्तरों के पुण्य जब फलीभूत होते हैं तब ऐसे परम सिद्ध–संतों की कृपा छाया जीव को प्राप्त होता है। सद्गुरु की सेवा से अल्पकाल में वह सब कुछ हो जाता है जो दीर्घकालिक साधना करके भी प्राप्त नहीं होता। उन्होंने बताया–महात्मा चरण दास की दो शिष्यायें सहजो और दया मात्र गुरु–भक्ति से ही योग की पराकाष्ठा को प्राप्त हुई थीं। उन्होंने पूछा– क्या महात्मा चरणदास के कुछ पद सुनना चाहेंगे।

हमने कहा– निश्चित ही सुनना चाहूँगा। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे कृपानाथ सद्गुरु देव की अनुकम्पा से ही आज यह आपका दिव्य साथ यात्रा में मिला है। समय, देश का भान नहीं। गन्तव्य कितना अभी दूर है इसकी चिन्ता नहीं। आपके साथ समय सार्थक हो रहा है। कृपया गुरु महिमा मुझे सुनायें।

बहुत ही भाव–विह्वल हो महानुभाव ने सुकण्ठ से निम्न पदों का पाठ सस्वर सुनाया। सिद्धयोग के सुधी पाठक पढ़ें।

प्रेम पगावन ज्ञान दे, योग जितावन हार।
चरणदास की वीनती, प्रभु सुनिये बारम्बार।।
तुम दाता हम मंगता, सद्गुरुदेव दयाल।
भक्ति दई व्याधा गई, मेटे जग जंजाल।।
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके आँव।
जीव ब्रह्म क्षण में कियो, पाई भूली बाँव।।
हरि सेवा सोलह बरस, गुरु सेवा पल चार।
तोभी नहीं बराबरी, वेदन कियो विचार।।

मैंने कहा इस उम्र में भी आपकी स्मृति, सस्वर पाठ सब देख सुनकर मन में हर्ष हो रहा है। उन्होंने कहा आप योग पथ के साधक हैं आपको चरणदास, एकनाथ, ज्ञानदेव आदि संतों की रचना को पढ़ना चाहिए। इन संतों की आन्तरिक साधन द्वारा योग हो रहा है। वे जब मौन हुए तब दिन के एक बज चुके थे। मुझे भूख अब सताने लगी थी।

श्री गुरुदेव जी द्वारा योग साधक एवं गृहस्थों को उपदेश

ब्रह्मचारी ओमप्रकाश, लखनऊ

एक योग साधक की नियमावली क्या होनी चाहिए उसके लिए श्री प्रभुजी ने मुझे आज्ञा दी थी कि तुम जहाँ भी रहो 5 से 6 बजे तक नित्य नियमित रूप से ध्यान में बैठना अपने गुरु मन्त्र का जाप करते हुए। मैंने श्री प्रभुजी की उस आज्ञा का पालन किया। उस नियम को निभाया और वही उनकी आज्ञा मैं तुम सबको बराबर देता रहता हूँ।

जो साधक परिपक्वता के साथ अपने अभ्यास से समय को सिद्ध बना लेते हैं, जो साधक नित्य निरन्तर एक ही समय में ध्यान में बैठते हैं उससे वह समय सिद्ध हो जाता है तो वह साधक उस समय यदि ध्यान में न भी बैठना चाहे तब भी उसके मन के अन्दर एकाग्रता आना शुरु हो जायेगी। इस प्रकार नियत समय पर नित्य ध्यान में बैठो फिर देखें कैसे तुम्हारा ध्यान नहीं लगता।

लम्बे समय तक किया हुआ अभ्यास फल देगा। दो चार दिन में कुछ भी नहीं होता। जप–ध्यान साधना में मन की एकाग्रता बहुत जरूरी है। बिना एकाग्रता के कुछ भी फल उस क्रिया का नहीं होता लम्बे समय तक अभ्यास करें और रोजाना करें और आदर पूर्वक करें। अर्थात् यही गुरुदेव जी का बताया हुआ मंत्र ठीक है। यही अभ्यास ठीक है, गुरुदेव ने जो भी बता दिया वही कल्याण का मूल है। इस प्रकार जो साधक करता है, वह समाधि तक एक दिन अवश्य पहुँच जाता है।

एक उत्तम साधक को योग ध्यान–जप का अभ्यास निरन्तर करते हुए जीवत्व के लक्षणों को अपने अन्दर से निकाल कर ईश्वरीय लक्षणों को प्रगट करना है। इसके लिए वीतराग पुरुषों के अन्दर अपने मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की उनमें लय कर देना होता है। ऐसा करने पर उनके लक्षण साधक के अन्दर आ जाते हैं।

वीतराग सिद्ध पुरुषों के चित्त में चित्त मन में मन, बुद्धि में बुद्धि और अहंकार में अहंकार विलय अपना कर देने के बाद साधक की स्वतः ही समाधि होने लगती है। साधक को सिद्ध सेवित स्थान तथा सिद्ध महापुरुषों का सानिध्य अवश्य ग्रहण करना चाहिए। साधक को अपने नियम का पक्का अवश्य होना चाहिए। नियमानुवर्तिता का पूरा–पूरा पालन करना चाहिए।

साधक को अपने शरीर को अरणि (एक लकड़ी) बनाए और प्रणव (ॐ या गुरु मंत्र) को उत्तरारणि (अर्थात् दूसरी लकड़ी) बनाए। फिर आती जाती श्वांस प्रश्वांस से मन्त्र मन्थन करें अर्थात् श्वांस–प्रश्वांस से मन्त्र जप करें। ऐसा करने से जप–ध्यान के निर्मथन (मंथन) से

शरीर में छिपा हुआ परमात्मा उसी प्रकार प्रकट हो जाता है– जिस प्रकार दूध का मंथन करने से दूध में छिपा घी प्रकट हो जाता है।

योगाभ्यासी साधक स्वाध्याय के बल से समाधि को प्राप्त करें और समाधि से स्वाध्याय का विचार करें। स्वाध्याय और योग दोनों की सम्पत्ति से परमात्मा का प्रकाश होता है। योगशास्त्र, गीता उपनिषदों के स्वाध्याय से अपने इष्टदेव के दर्शन अवश्य होते हैं। देवता ऋषि सिद्ध लोग स्वाध्याय शील व्यक्ति के सामने आते हैं और उनके कार्यों को सफल करते हैं।

साधक को प्रथम गुरुदेव का इष्टदेव के वाहि स्वरूप (चित्र) को खुली आँख एकटक त्राटक से देखते रहना चाहिए फिर आँख दुखने लगने या आँख से पानी आने पर आँख बन्द करके उस रूप को अन्दर देखना चाहिए। न दीखने पर फिर आँख खोलकर देखते रहना चाहिए। इसके बाद फिर आँख बन्द करके अन्दर देखें। जब चित्र अन्दर दीखने लगे मन उसी में लगा रहे तो इसके बाद वह चित्र सजीव हो जायेगा। तुम उससे बात कर सकते हो।

उदाहरण के लिए एकलव्य ने गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर श्रद्धा से उसका ध्यान करता था। एकलव्य की श्रद्धा के कारण मिट्टी की बनाई हुई मूर्ति क्रियात्मक हो गई गुरु द्रोणाचार्य की मूर्ति ने एकलव्य को सारी विद्या सिखा डाली।

साधक अपने गुरु मंत्र का अपनी जीभ से इतना जाप करे कि वह मंत्र मन में प्रवेश कर जाये अर्थात् मंत्र जप करके उठ जाने पर भी मंत्र मन में बराबर चलता रहे, मन को मंत्र जप से हटाना भी चाहे तो भी मन मंत्र से न हटे। ऐसा होने पर भी साधक को छः महीने अनवरत मंत्र जाप करते रहना चाहिए। इसके बाद जीभ से जप छोड़कर मानस जप की आदत डालना चाहिए। मानस जप 3 घण्टे लगातार 6 महीने करना चाहिए। ऐसा करने से मंत्र फिर बुद्धि में प्रवेश कर जायेगा। मंत्र के बुद्धिगत हो जाने के बाद स्फुट प्रज्ञालोक अनायास ही होने लगता है।

साधक को सिद्ध सेवित स्थान, शिवालय, गंगातट, पर्वत, गुफा आदि पवित्र सात्विक स्थानों में जाकर जप अनुष्ठान करने से शीघ्र सफलता मिलती है क्योंकि इन स्थानों में सतोगुण होता है तथा सिद्धों की कृपा उनकी साधना में सहायता करती है।

हर साधक को गुरुदेव जी की शरण में ही जाकर गुरु उपदेशानुसार अपनी उच्चतम प्रगति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जिससे शीघ्रातिशीघ्र परमानन्द एवं शाश्वत शान्ति की प्राप्ति हो सके।

साधक को चाहिए कि अहंकार को अपने मन के अन्दर न आने दे। किसी की कामना भी मन में न आने दे, क्रोध भी मन में न आने दे एकान्त में रहे शुद्ध सात्विक स्वल्प भोजन करके एकान्त में रहकर अपने मन के अन्दर सत्व समृद्धि कर लेता है अर्थात् रजोगुण व तमोगुण को दबाकर सतोगुण बढ़ा लेता है वह साधना में शीघ्र सफलता को पा लेता है।

मनुष्य ब्रह्मत्व को कैसे प्राप्त होता है उसके लिए काम, क्रोध, राग, द्वेष, इच्छा, अहंकार आदि को साधक अपने मन के अन्दर न आने दे क्योंकि वह सब आन्तरिक शक्ति के निकलने के मार्ग है। साधक के मन के अन्दर किसी प्रकार की लोलुपता आसक्ति न रहे इनको छोड़कर जो साधक ध्यान योग का अभ्यास करते हैं उनके अन्दर ब्रह्मत्व अपने आप आ जाया करता है।

एक साधक इस प्रकार ज्यों-ज्यों अपने अभ्यास को बढ़ाता जाता है तो वह धारणा उसके सामने आती रहती है उसका परिणाम यह निकलता है कि चित्त उसके अन्दर टिक जाता है। चित्त का सदृश्य प्रवाह धारणा में बना रहना ही फिर ध्यान कहलाता है और फिर जिसमें अर्थ लक्ष्य मात्र भासित होता रहे और अपना स्वरूप नष्ट हो जाये; उसका नाम समाधि है।

एक साधक इस विधि से निर्विघ्न समाधि तक पहुँच सकता है। मंत्रजप, स्वाध्याय से साधक योग को प्राप्त होवे फि र योग से स्वाध्याय का मनन करे। स्वाध्याय और योग की सम्पत्ति से परमात्मा का प्रक ा हो जाता है। स्वाध्याय से इष्ट देवता की कृपा लाभ होती है। ऋषि, देवता, सिद्ध लोग स्व ध्याय शील साधक के सामने जाया करते हैं और उनके काम कर दिया करते हैं।

जो अभ्यास गुरुदेव ने तुम्हें बताया है उसे लम्बे समय तक लगातार करते चले जाये बिना किसी नागा के प्रात: 5 बजे से 9 बजे तक नित्य निरन्तर जप ध्यान का अभ्यास करते चले जायें। इस प्रकार 5 से 6 वर्ष तक लगातार करते रहने से निश्चित सिद्धि को प्राप्त हो जाओगे।

एक साधक जो ब्रह्मचारी है ब्रह्ममुहूर्त में नित्य निरन्तर ध्यान करता है तो साधक की आदत ब्रह्मी आदत हो जाती है। उसकी ब्रह्म में विचरण करने की आदत हो जायेगी। सच्चे अर्थों में उसी को ब्रह्मचारी कहा गया है। विषयों में विचरने वाले संसार प्रपंच में रहने वाले को ब्रह्मचारी नहीं कहा जा सकता। साधक का अपना दायरा क्या है? तथा साधना करते-करते जिस सत्य में पहुँचता है उसका रूप क्या है यह जानना अति आवश्यक है।

राग, ईर्ष्या, परोपकार, असूया, द्वेष, अमर्ष, ये चित्त के छ: प्रकार के मल छ: प्रकार की कालिमायें हैं जो चित्त को हर समय मलिन बनाये रखते हैं। यह छ: मल ही साधक के चित्त को सब प्रकार से मलिन, कलुषित एवं विक्षिप्त बनाये रखते हैं। इन मलों से ग्रसित चित्त वाला साधक कभी भी एकाग्रता को प्राप्त नहीं कर सकता। इन मलों को धोने के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता सुखी प्राणियों में मित्रता की भावना, दुखियों में करुणा और पुण्यात्मा लोगों में मुदित्व एवं पापियों में उपेक्षा करने से चित्त पूर्ण रूपेण प्रसन्न रहता है।

साधक को साधना में शीघ्र सिद्धि प्राप्त करने के लिए एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात् एक मंत्र, एक इष्ट, एक आसन, एक स्थान, एक वस्त्र, एक समय होना चाहिए। इनमें बदलाहट नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने वाले की स्थान, समय और आसन सब सिद्ध हो जाते हैं। वस्त्र, स्थान आदि उसके अभ्यास में सहायक हो जाते हैं। एक ही शास्त्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

जब कोई अभ्यास लम्बे समय तक किया जाता है तब परिपक्व होता है। 2–4 दिन अभ्यास से परिपक्वता नहीं आती। तुम मेरुदण्ड को सीधा करके अपने अभ्यास में बैठो और यदि तुमसे इस तरह बैठा न जाये तो तुम लेट जाओगे सीधे शव आसन से। शव आसन में भी ध्यान लगाने की विधि है। किंतु उसमें करवट नहीं बदलना चाहिए। शरीर दुखने लग जाये तो भी हिले–डुले नहीं मुर्दे की तरह लेटा रहे इस प्रकार भी सुषुम्ना चल पड़ती है। इसमें भी ब्रह्म–नाड़ी में गति हो जाती है।

अपने गुरुमंत्र का जप रूप स्वाध्याय करते–करते साधक को चाहिए कि ध्यान करें। मंत्र जपते–जपते जब थक जायें तो साधक को चाहिए कि अपनी आँखें बन्द करके अन्तरानुभूति को और बढ़े भगवान जीव को ध्यान करने लगे। ध्यान के अन्दर भी स्वाध्याय व मनन करता रहे। स्वाध्याय (जप) और योग ध्यान की सम्पत्ति जहाँ इकट्ठी हो जाती है वहाँ परमात्मा का प्रकाश हो जाता है अर्थात् परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं।

गृहस्थियों को उपदेश

गृहस्थियों को साधना इस प्रकार करना चाहिए कि गृहस्थ साधक 4 बजे उठकर 5 बजे से 6 बजे तक बैठकर जीभ से गुरु मंत्र का जाप करें फिर इसके बाद मेरुदण्ड को सीधा करके गुरु मंत्र का श्वांस–प्रश्वांस से जप करे साथ ही ध्यानाभ्यास भी करें।

गृहस्थ साधक इसी प्रकार प्रातःकाल की ही तरह सायंकाल भी एक दो घंटा जप करें। इसके बाद रात्रि को हल्का भोजन करके तखत पर सीधा लेट कर अपने इष्ट देव का ध्यान तथा गुरुमंत्र जप करते हुए नींद ले आये। इस प्रकार की नींद योग निद्रा बन जायेगी। उसका अपने आप ध्यान चलने लगेगा। इस नियमावली को गृहस्थ साधक अपने अन्दर घटित करें। नित्य ध्यान जप से उसका अभ्यास पुष्ट होता चला जायेगा। धारणा परिपक्व होकर ध्यान लगने लगेगा, ध्यान परिपक्व होने पर समाधि सिद्ध हो जायेगी।

गृहस्थी लोग यज्ञ, दान, परोपकार, स्वाध्याय आदि सतकर्म करते रहें। इन पुण्यों के फलस्वरूप उन्हें सिद्धों की संगति मिलेगी फिर सिद्ध कृपा से वो योगी बन जायेंगे। तब कहीं जाकर संसार प्रपंच उनका नष्ट होगा। इसके अलावा संसार प्रपंच से छूटने का अन्य कोई इनके लिए उपाय नहीं है।

गृहस्थितियों की साधना यही है कि वह सतकर्म, परोपकार, दान पुण्य, धर्म, कर्म करते हुए सत्व गुण को बढ़ाते रहें, उन पुण्यों के फलस्वरूप उन्हें सिद्ध सद्गुरु की संगति मिल जायेगी तब सिद्ध सद्गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलकर परागति को प्राप्त हो जायेंगे।

जीवन में योग की आवश्यकता

आचार्य पूर्णचन्द्र पन्त

भारत अनादिकाल से ही विश्व का धार्मिक गुरु एवं अध्यात्मिक पथ–प्रदर्शक रहा है। यहाँ समय–समय पर ऐसे सिद्धयोगी जन्म लेते रहे हैं, जो केवल भारत का ही नहीं वरन् समस्त जगत का सन्मार्ग–निर्देशन करते रहे है और आज भी कर रहे हैं। किंतु आज भारतवासी उससे यथेष्ट लाभ नहीं उठा रहे हैं। कारण कि पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर आज का भारतीय स्वयं को बिल्कुल ही भूल बैठा है। वह अपनी आदर्श संस्कृति से दूर भागता जा रहा है और भौतिकवाद की होड़ में सबसे आगे निकलना चाहता है। आध्यात्मिक जगत के बारे में सोचने का भी समय उसके पास नहीं है और न वह इसकी आवश्यकता ही समझता है। प्रगतिवाद के बहाने वह स्वच्छन्द आचरण कर रहा है। गुरु तथा शास्त्र वाक्यों में उसे अविश्वास ही नहीं है बल्कि वह उनका घोर–विरोधी बन गया है। ईश्वर सम्बन्धी चर्चा को कोरी क ना समझता है तथा पूजा–पाठ, जप–तप आदि कृत्यों को वह ढोंग की संज्ञा देता है। यही कारण है कि वह अपने जीवन को जितना सुखी बनाना चाहता है, उतना ही दुःखी बनता जा रहा है। उसकी इच्छायें एवं आवश्यकतायें असीम है। अतः उसे शान्ति नहीं है और अशान्ति ही उसके दुःख का मूल कारण है। ''अशान्तस्य कुतः सुखम्'' के सिद्धान्त के आधार पर अशान्त व्यक्ति को कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। ईश्वर की सत्ता एवं शास्त्रों में अविश्वास ही आज की बढ़ती हुई अनुशासनहीनता तथा नैतिकता के ह्रास का एकमात्र कारण है। आध्यात्मिक दृष्टि से आज समाज पतन के गर्त पर खड़ा है और मानवता अन्तिम सांस ले रही है। ऐसे समय पर योगी ही एकमात्र ऐसा साधन है, जिसके अवलम्बन से समाज का तथा राष्ट्र का पुनरूत्थान हो सकता है और जन–जन कल्याण का भागी बन सकता है।

प्रश्न उठता है कि योग क्या है और उसका अधिकारी कौन है? इसका उत्तर है– योग एक ऐसी सार्वभौम विद्या है, जिसका अधिकारी कोई भी व्यक्ति हो सकता है। वह चाहे किसी भी जाति अथवा धर्म से सम्बन्धित क्यों न हो, पुरुष हो या स्त्री हो– योग का आश्रय लेकर अपना तथा राष्ट्र का जीवन सुखी एवं कल्याणमय बना सकता है।

योग एक ऐसी विद्या है, जोकि मनुष्य को जीने की कला सिखाती है। किस प्रकार हम अधिक से अधिक समय तक कार्य–सम्पादन करने की सामर्थ्य रखते हुए जीवित रह सकें, हमारा मन तथा इन्द्रियां किस प्रकार स्वस्थ रहें? इस बात का बोध हमें योग ही कराता है।

योग शब्द संस्कृत के युज् धातु से बना है। जिसका अर्थ है –मिलना। अर्थात्– जीवात्मा का परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित करना।

साधारण रूप से यम–नियमों का पालन करते हुए जीवन को एक विशिष्ट दिशा प्रदान करना तथा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना योग की प्रारम्भिक भूमिका है।

योग इन्द्रियों की चंचलता को शान्त करता है और मन को एकाग्रता प्रदान करता है। एकाग्रता के अभ्यास से योगी का मनोबल बढ़ जाता है और वह दुःखद्वन्द से सर्वथा मुक्त हो जाता है। वास्तव में देखा जाये तो सभी प्रकार के दुःखों का कारण मन की चंचलता ही है। यदि मन शांत है, प्रसन्न है तो दुःख है ही कहाँ? क्योंकि दुःख और सुख तो अनुभव के विषय हैं और अनुभव करने वाला मन है। अतः मन अथवा चित्त एवं उसकी वृत्तियों को रोकना ही योग है।

योगदर्शनकार महर्षि पतंजलि ने योग की परिभाषा निम्न सूत्र से की है:–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

अर्थात् चित्तवृत्तियों का सर्वथा रुक जाना ही योग है।

अधिकारी भेद से योग को चार श्रेणियों में बाँटा गया है– मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग। योग के आठ अंग हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।

चाहे किसी रूप में हो, जीवन में योग सिद्धान्तों को अपनाना नितान्त अपेक्षित है। किसी भी एक यम या नियम का पालन करने से शेष यम–नियमों का पालन स्वतः ही हो जाता है और वे यम–नियम ही साधक के जीवन के सिद्धान्त बनकर उसे योगारूढ़ कर देते हैं। स्व. श्री गाँधी जी का जीवन इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। उन्होंने सत्य और अहिंसा का आजीवन पालन किया, जिससे उनका जीवन दिव्य एवं योगमय बन गया।

इन यमों की साधना से उनकी इच्छाशक्ति इतनी बढ़ गयी जिसके बल पर उन्होंने सदियों से पराधीन भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त करा दिया यह बात सारा संसार जानता है। अहिंसा ही उनका एकमात्र शस्त्र था जो कि अष्टांग योग का महत्वपूर्ण अंग यम के अन्तर्गत आता है।

आज भारत संकट के दौर से गुजर रहा है। देश के आगे कई प्रकार की जटिल समस्यायें हैं। उनमें से कुछ समस्यायें ऐसी भी हैं, जिनका एकमात्र कारण देशवासियों में नैतिकता का अभाव है। चूँकि किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र का सबसे बड़ा बल उसका नैतिक बल ही है। अतः देशवासियों में नैतिकता के विकास के लिए योग–सिद्धान्तों को अपनाना नितान्त अपेक्षित है। योग की कर्णाक्षरी यम–नियमों से आरम्भ होती है, जिसका उद्देश्य व्यक्तित्व में नैतिकता का विकास करना है।

आज भारत को योग की आवश्यकता है। क्योंकि योग विश्व–बन्धुत्व की भावना प्रदान करता है, क्योंकि योगी समदर्शी होता है वह सब प्राणियों को अपनी आत्मा समझता है। अतः सबसे प्रेम करता है और सबका हित चिन्तन करता है।

जैसे –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्व समदर्शनः।।

(गीता 6/29)

आज का बुद्धिवादी समाज हर बात को तर्क की कसौटी पर कसता है आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धि की परिधि को पार कर आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए हम योग की ओर मुड़ें।

आज का समाज जीवन की सच्चाई को बहुधा भूल बैठा है। सात्विक एवं पवित्र जीवन को वह ढोंग कहता है, शिष्टता के नाम पर तरह–तरह के आडम्बर करता है। अतः जीवन की सार्थकता के बोध के लिए योग की आवश्यकता है।

वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति के लिए भी योग की आवश्यकता है। क्योंकि योग स्वयं ही विज्ञान है। भारत का प्राचीन विज्ञान पूर्णतया योग पर आधारित था, किन्तु आज का विज्ञान केवल भौतिकता पर आधारित है। बिना आध्यात्मिक प्रगति के भौतिक प्रगति अधूरी है और बिना योग के विज्ञान पंगु है।

अतः प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह अपने व्यक्तित्व के सर्वांङ्गीण विकास के लिए, हर प्रकार के दुःख–द्वन्दों से मुक्त होने के लिए तथा अपने देश की गरिमा को बनाये रखने के लिए ऋषियों की अमर देन योग विद्या को अपनाये।

कोई भी मनुष्य पूर्णतः दोष रहित नहीं है, कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो स्वतः सम्पूर्ण हो अथवा जो स्वयं पर्याप्त बुद्धिमान् हो। अतः हममें पारस्परिक सहनशीलता होनी चाहिए। हमें एक–दूसरे को आश्वासन, पारस्परिक सहायता, शिक्षा और उपदेश देते हुए मिल–जुलकर उत्साहपूर्वक भगवान् के मार्ग में चलना चाहिए।

कर्म और पुनर्जन्म

रामेश्वर खण्डेलवाल, गंगापुर सिटी

पुनर्जन्म का आधार कर्म ही है। उसका फल भोगने के लिए ही पुनर्जन्म लेना पड़ता है। कई सन्त मतों का कहना है कि मनुष्य योनि के बाद जीव को अन्य योनियों में नहीं जाना पड़ता, लेकिन ये सत्य नहीं है। कर्मफल भोगने के लिए मनुष्य जन्म के पश्चात् जीव किसी भी योनि में जा सकता है। जड़ भरत जैसे महासिद्धयोगी को भी हरिण का जन्म लेना पड़ा। ये सब कर्म पर आधारित है कि मनुष्य शरीर के बाद जीवआत्मा को फल भोगने के लिए किस योनि में जाना पड़ेगा। जब तक कर्म वासना का क्षय नहीं हो जाता तब तक जीव भिन्न-भिन्न योनियों में भटकता रहता है।

बार-बार जन्मना, बार-बार मरना यही जीव क्रम है। इस चक्र का पहिया कभी रुकने वाला नहीं है। यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा है। जीवआत्मा भी अनादि काल से सुख-दुःख भोगता चला आ रहा है। कर्म फल बिना भोगे नहीं कटता और इस फल को भोगने के लिए किसी न किसी योनि का सहारा लेना पड़ता है। जन्म से ही कर्म चक्र शुरू हो जाता है। इसका स्पष्ट उदाहरण है-

एक बच्चा अच्छे नर्सिंग होम के स्पेशल वार्ड में कई डाक्टरों व नर्सों की देख-रेख में जन्म लेता है। परिवार वाले खुशी में अच्छा पैसा खर्च करते हैं। दूसरी ओर एक औरत अपने खेत में फसल की कटाई कर रही है। ऊपर से सूर्य की तपती गर्मी, नीचे गर्म तपती धरती माँ ऐसे समय में वो एक बच्चे को जन्म देती है। जिसको संभालने वाला दूसरा कोई प्राणी नहीं है, वो अपने बच्चे को घास-फूँस भरे टोकरे में लिटा कर अपने घर लेकर आती है।

ये सब क्या है? ये कर्मों का फल भोग है। जो जन्म से ही शुरू हो जाता है। एक बच्चे के कर्म इतने अच्छे हैं कि जन्म से ही उसे धनवान परिवार मिला। वहीं एक बच्चे के पूर्व के कर्म खराब रहे जिसके फलस्वरूप उसे जन्मते दुःखद परिस्थितियों का सामना शुरू हो गया। ये सब पूर्व कर्मों के परिणामस्वरूप ही प्राप्त हुआ है। जन्म-मरण के चक्र में डालने वाले, भाग्य बनाने वाले हमारे द्वारा ही किये गये कर्म ही हैं। कर्म ही हमको स्वर्ग-नरक भोगने को बाध्य करते हैं। कर्म ही हमें अगले जन्म के जाति, आयु और भोग देने वाले हैं। वर्तमान में जो हमें कुल-खानदान, गरीबी-अमीरी देने वाले हमारे कर्म ही हैं।

एक कर्म होता है पुण्य का जिससे ये लोक भी सुखी और परलोक भी सुखी। एक होता पाप कर्म जिससे वर्तमान जीवन बिगड़ा और आगे दूसरा जन्म कैसा होगा, मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा या नरक की यातना भोगनी पड़ेगी। मनुष्य का प्रायः ऐसा स्वभाव होता है जिसमें अपना

स्वार्थ दिखाई देता है उसी कर्म को बड़ी तत्परता से करने में लग जाता है। परंतु वही कर्म उसके लिए बन्धन कारक हो जाता है।

कर्म भी फल देने में स्वतन्त्र नहीं है। क्योंकि वो जड़ है। इस लोक में भी सेवा, नौकरी, व्यापार आदि कर्म स्वयं स्वतन्त्र रूप से फल नहीं देते। किसी नियामक, प्रबन्धक या मालिक ही उनको कर्मों के फलस्वरूप वेतन देते हैं। नौकरी करने वालों को नौकरी पैसा नहीं देती बल्कि जिसके यहा नौकरी कर रहा है वो स्वामी, मालिक उसको एवज में पैसा देते है। अतः कर्मों के फल देने वाले एक 'कर्मफलदाता' को मानना पड़ता है। वो है हमारा ईश्वर, परमात्मा। परमात्मा के द्वारा ही हमें हमारे कर्मों के फल का भुगतान होता है। तभी हम बुरे कर्मफल में परमात्मा को दोष देते रहते है कि "भगवान ने बहुत बुरा किया ये अच्छा नहीं किया।" इस तरह का दोष हम परमात्मा पर लगा कर अपने दिल का गुबार हल्का कर लेते है। जबकि परमात्मा केवल वो ही देते हैं जो हमने पैदा किये हैं। हमने ही अच्छे–बुरे कर्म करके ही वो अच्छी–बुरी परिस्थिति पैदा की है। इसमें भगवान का कोई दोष नहीं है। ये सब हमारा ही किया हुआ है।

आस्तिक कहता है– 'अभी अच्छे–अच्छे कर्म करो, क्योंकि इस जन्म के बाद दूसरा जन्म भी रहेगा उस समय अच्छे कर्म ही काम आयेगें। नास्तिक कहता है– 'कौन निश्चित रूप से यह कह सकता है कि इस जन्म के बाद भी हम पुनर्जन्म लेंगे, वैसे भी यदि हम अच्छे कर्मों का संग्रह करेंगे तो भविष्य में लाभदायक होंगे। इस अमर आत्मा को सुखी रखने के लिए सदा अच्छे कर्म करने चाहिए। कई व्यक्ति जो पुनर्जन्म को नहीं मानते उनसे यह पूछना कि गाय, बकरी, गधे, घोड़े के बच्चे पैदा होते ही उछल–कूद करने लगते हैं तो उनको कौन सिखाता है। पक्षियों के बच्चे उड़ने लगते हैं, उनको ये ज्ञान कौन देता है। मनुष्य का बच्चा भी पैदा होते ही माँ अपने स्तन से लगाती है तो बच्चा उसको चूसने लगता है और दूध पीता है। ये सब हमको पुनर्जन्म की मान्यता देते हैं।

पुनर्जन्म के संस्कार हमारे मन में रहते हैं। उन संस्कारों का उद्‌बोधन कराने वाला देश, काल, परिस्थिति आदि कोई भी पदार्थ जब सामने आता है, संस्कार जाग्रत हो जाते है और प्राणी को पूर्व जन्म के अभ्यास से उस कार्य में प्रवृत्त कर देते हैं। यही कारण से पक्षी का बच्चा पैदा होते ही बिना शिक्षा के उड़ने लगता है। इससे हमें आत्मा की अमरता भी सिद्ध होती है। जीवात्मा अजर–अमर अविनाशी है उसे अपने अनादि कर्मों के अनुसार शरीर प्राप्त होता है। उनके द्वारा ही शुभाशुभ कर्मों के फल भोगता है और पूर्व संस्कारों के अनुसार कर्म करता है।

इस प्रकार जब तक जीवों के एवं उनके संस्कार बने रहते है तब तक जन्म–मरण रूपी संसृति–चक्र चलता रहता है। इन सब कर्मों का क्षय भोग से, ज्ञान से एवं परमात्मा की पराभक्ति से ही संभव है। पराभक्ति द्वारा प्रभु का साक्षात्कार होने पर कर्मों की निवृत्ति एवं मुक्ति हो जाती है। फिर पुनर्जन्म नहीं होता। जब तक मनुष्य के अन्दर वासना का बीज मौजूद है तब तक जन्म–मरण से छुटकारा नहीं पा सकते। जब वासना पूर्ण रूप से समाप्त हो जाएगी

तब हमारी मुक्ति होगी। चौरासी लाख योनियों में भटकता ये जीव भगवत् कृपा से मनुष्य जन्म पाता है। मनुष्य योनि ही हमें स्वर्ग, नरक और अपवर्ग देने वाली है। इसी मनुष्य योनि से चार पदार्थों का सम्बन्ध भी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मनुष्य योनि में ही मौजूद है। निष्काम कर्मों का अनुष्ठान करने से चित्त शुद्धि द्वारा भगवत प्रेमा रूपा भक्ति के अंकुरित होने पर भगवत साक्षात्कार कराने वाली है। अतः इस दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर ही भगवत प्राप्ति कर सकता है और अपनी मुक्ति का साधन कर सकता है।

यह मनुष्य शरीर शूद्र कर्मों को करने के लिए ही नहीं मिला है बल्कि अपना कल्याण करने के लिए अपने परम पिता की प्राप्ति के लिए मिला है। भोग करना, सोना, खाना–पीना ये सब तो पशु योनियों में भी होता है। केवल भोगने के लिए ही नहीं बल्कि इस जन्म मरण के चक्र से छुटकारा पाने के लिए ये मनुष्य योनि मिली है। इसको बरबाद नहीं करना, बल्कि इसका सदुपयोग करना। यह मानव शरीर परमात्मा की देन है, जिससे नित्य आनन्द का अनुभव होता रहे। अपने आपको उस ब्रह्म की प्राप्ति में लगा दो। केवल यही मनुष्य योनि ही है जो ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। भगवत प्राप्ति कर सकता है। देवता भी इस योनि को तरसते हैं। अतः ये शरीर एक नौका है जिसके द्वारा भव–सागर को पार किया जा सकता है।

संतों की मामूली बातें महान् उपदेश होती हैं। चित्त में पड़ी हुई गाँठें उनके शब्दमात्र से छिद जाती हैं। इसलिए बुद्धिमानों को चाहिए कि सत्संग करें। सत्संग से साधकों के भवपाश कट जाते हैं।

इच्छा-त्याग में ही परम सुख है

स्व. मगनलाल हरिभाई व्यास

शरीर, चित्त और चेतन – इन तीनों में शरीर और उसकी इन्द्रियों से कर्म होते हैं। परंतु वह स्वभाव से जड़ है, अतएव चित्त उसको प्रेरित करता है। इससे कर्तृत्व चित्त में है। चेतन असंग होने के कारण न कुछ करता है और न कुछ कराता है। तथापि शरीर और चित्त दोनों को सत्ता और शक्ति उस चेतन से ही प्राप्त होती है।

सुख-दुःख का अनुभव करने वाला चित्त है। जन्म-मरण का अनुभव करने वाला भी चित्त है। नाना प्रकार के शरीरों में भटकने वाला भी चित्त है। अनेक इच्छाएँ करने वाला और विकारी चित्त ही है।

चित्त जो अनुभव करता है, उसका उसको सुख-दुःख होता है। निद्रालु मनुष्य का शरीर चाहे राजा की शय्या पर क्यों न हो, यदि उसका चित्त स्वप्न में भिखारी की शय्या का अनुभव करता है तो उसको उसी का सुख मिलेगा, राजा की शय्या का सुख उसे नहीं मिलेगा। जागते हुए कोई भी आदमी किसी काम में लीन हो, दूसरा उसका मजाक करता हो और तीसरा उससे पूछे कि क्या तुम्हें पता नहीं, इसने तुम्हारा मजाक किया है? तो वह उत्तर देगा, 'नहीं भाई, मेरा चित्त दूसरे काम में फँसा था।' जागते या सोते चित्त की वृत्ति जिसके साथ तदूप होती है, उसी का अनुभव चित्त करता है, दूसरे का नहीं।

बालक का चित्त खेल में लीन रहता है। वह भूखा हो तो भी भूख के दुःख का अनुभव नहीं करता, बल्कि खेल के आनन्द का ही अनुभव करता है। चित्त का अनुभव करना, न करना उसके अभ्यास के ऊपर निर्भर करता है, चित्त के अनुभव की दो दिशा हैं– एक है जगत् का भोग और दूसरा है आत्मानन्द। जैसे एक राजा की दो पत्नियाँ हैं और वह चाहे जिसके साथ सुख मान सकता है। उसी प्रकार चित्त चाहे तो संसार-सुख का अनुभव करे और चाहे तो आत्मसुख का अनुभव करे। क्या अनुभव किया जाय, इसका निर्णयकर्ता वह स्वयं है।

चित्त को संसार-सुख का अनुभव करना हो तो इसके लिए शरीर (इन्द्रियों के साथ) और भोग पदार्थ आदि को उत्पन्न करना पड़ता है। चित्त जितना स्वयं उत्पन्न करेगा, उतना ही भोग सकेगा। जैसे पतिव्रता स्त्री को परपुरुष भोग के काम नहीं आता, उसी प्रकार चित्त को दूसरों से उत्पन्न अशेष भोग काम नहीं आते। मनुष्य यदि यह सोचता है कि उसको कोई साधु कुछ दे देगा, कोई देवी-देवता दे देंगे, तो यह उसकी बड़ी भूल है। अपनी साधना के बिना कुछ भी नहीं मिलता, फिर वह साधना चाहे इस जन्म की हो या पूर्व जन्म की। देवता और साधु प्रसन्न होकर जो कुछ देते हैं वह भी अपनी साधना का ही फल होता है; क्योंकि हम उनको

प्रसन्न करने के लिए कुछ पुरुषार्थ करते हैं। इसलिए भाई! साधन–श्रम किये बिना कुछ भी प्राप्त करने की आशा छोड़ देनी चाहिए।

कितना अधिक परिश्रम करके चित्त जगत् में भोग का शरीर तथा भोग प्राप्त करता है, जो शरीर विनाशी और विकारी है तथा भोग भी वैसे ही हैं। इसलिए श्रम करने पर जो मिलता है उससे हर्ष होता है और उसमें विकार तथा विनाश होने से शोक होता है। अतएव चित्त भोग और शरीर को पाकर हर्ष और शोक से कभी मुक्त नहीं हो सकता। हर्ष और शोक की परम्परा चालू ही रहती है। जन्म–मरण चलता ही रहता है।

चींटी से लेकर ऊँचे लोकों तक सारे ब्रह्माण्ड में पाँच ही भोग हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनमें मुख्यतः रस और स्पर्श–सुख के पीछे कितने ही देवता, राक्षस और राजा बर्बाद हो चुके हैं।

इसी कारण पूरे परिवार के साथ रावण लंका को जलाकर स्वयं भस्मीभूत हो गया। इन्द्र बर्बाद हो गये। महाभारत की अठारह अक्षौहिणी सेना स्वाहा हो गई। यदि यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि अनेकों युद्ध केवल स्त्री के कारण हुए हैं। देवता, दानव, मानव ही नहीं, बड़े–बड़े ऋषि–मुनि, योगी–तपस्वी, सभी इस जगत् के पाँच भोगों में से– मुख्य रूप से जीभ और उपस्थ के पीछे अनेक जन्मों के श्रम को बलि दे चुके हैं, तथापि उससे तृप्ति नहीं मिली। सभी भोग में सुख मानकर श्रम करते हुए मर गये और उन्हें अन्त में निराश होना पड़ा।

जीभ का भोग–पदार्थ चाहे जो हो, जीभ के नीचे उतरते ही वह विष्ठा हो जाता है। स्त्री–सुख चाहे जितना हो, स्त्री का शरीर चाहे कितना ही सुन्दर हो, एक–एक अंग पर चाहे जितनी उपमा दी जाय, परंतु सारा शरीर वस्तुतः बना होता है केवल हाड़, मांस, रुधिर और चामका ही। वह विकारी और विनाशी होता है। भोग भोगने के बाद सभी को ग्लानि और तेजहीनता ही हाथ लगती है। हम सब अपने को बुद्धिमान मानते हैं; पर हैं मूर्खशिरोमणि। अनेक श्रम से–अनेक पुण्य, जप–तप, दान और योग को खोकर स्त्री की प्राप्ति करते हैं, तो वह क्षणभर के स्पर्श–सुख के लिए! इतना होने पर भी चित्त उससे विराम नहीं लेता–यही माया है, यही अज्ञानता है। इसी के निवारण के लिए शास्त्रों और संतों के उपदेश की आवश्यकता है। हमारी कितनी बड़ी मूर्खता है कि हम जिस भोग शरीर का फल सर्वथा क्षणिक, विकारी और विनाशी है, उसी की प्राप्ति के लिए तो अनेक जन्मों तक पुरुषार्थ करते हैं और जिस सनातन आत्मा में वृत्ति लगाने से अखण्ड अनुपम अविनाशी आनन्द मिलता है और जो सहज प्राप्त है उसकी चाह भी नहीं करते!

चित्त की वृत्ति आलम्बन के बिना नहीं रहती। या तो वह भोग की ओर जायेगी या आत्मा की ओर। जिस प्रकार जीव शरीर के बिना जी नहीं सकता, उसी प्रकार चित्त विषयानन्द या आत्मानन्द के बिना नहीं रह सकता। विषयानन्द भूलने पर आत्मानन्द का अनुभव होता है और आत्मानन्द के भूलने पर विषयानन्द का। चित्त बाहर अनुभव नहीं करता,

वह अपने भीतर अनुभव करता है। बाहर से पूँजीपति कहलाने वाला जो व्यापारी अंदर से दिवालिया है, वह जैसे धन का अनुभव न करके दिवालियापन का अनुभव करता है, उसी प्रकार चित्त के भीतर जो कुछ होता है, उसी का वह अनुभव करता है।

सुख या दुःख का अनुभव चित्त से ही होता है। जिस प्रकार लड्डू चाहे कितना ही अच्छा हो, जब वह जीभ पर आता है, तभी उसका अनुभव होता है; और यदि जीभ रोगग्रस्त हो तो लड्डू का यथार्थ स्वाद उसे नहीं मिलता। इसी प्रकार चित्त में जो चिन्ता, भय, क्लेश, क्रोध, इच्छा आदि भरे होते हैं, उन्हीं का अनुभव वह करता है, दूसरी वस्तुओं का अनुभव नहीं करता। पुत्र का ब्याह कराने गये हुए पिता को यदि उसका समधी कठोर वचन कह दे और उससे वह खिन्न हो जाये तो उसका चित्त उस अवसर के बाजे, गीत, स्वादिष्ट भोजन, वार्तालाप आदि किसी वस्तु में सुख का अनुभव नहीं करता, उसके चित्त को तो समधी के बाग्बाण ही व्याकुल किये रहते हैं।

मनुष्य धन–धाम, स्त्री–पुत्र और पद–वैभव की प्राप्ति के पीछे पागल है। पर इन सबके प्राप्त होने पर भी जिसके चित्त में चिन्ता, भय और क्रोध हो, उसको ये सब कभी सुख नहीं दे सकते; वह तो चिन्ता, भय और क्रोध में ही डूबा रहता है। अपना घर चित्त है। अनेकों प्रकार के विकार, भय, क्रोध, ईर्ष्या, रोग आदि – सबका मूल इच्छा है। प्रत्येक इच्छा से ही प्रत्येक दुर्गुण और प्रत्येक दुःख का उत्पादन होता है। इच्छा का अर्थ है–प्राणी पदार्थ से सुख प्राप्त करने की चाह। चित्त में चाह उत्पन्न होते ही सारे सुखों का नाश हो जाता है। सारे चिन्ता–दुःखों का मूल यह चाह ही है।

'चाह गई चिंता गई मनवा बेपरवाह।'

चित्त में जब कुछ भी नहीं रहता, तभी पूर्णता की प्राप्ति होती है। जैसे, जिस जगह कुछ नहीं होता, वहाँ आकाश रहता है; वैसे ही, चित्त में जब कुछ नहीं रहता, तब वहाँ आत्मा या परमात्मा का निवास होता है। आत्मा का ही अर्थ है – शान्ति, आनन्द और पूर्णता।

जब किसी प्रकार की भी इच्छा नहीं होती, तब आत्मानन्द का अनुभव होता है। इच्छा के होते ही इच्छित वस्तु की अप्राप्ति का दुःख अनुभव होने लगता है। इच्छा से ही दुःख की शुरूआत होती है।

जहाँ कोई वस्तु होती है, उस देश विशेष में वायु और आकाश नहीं होता, उसी प्रकार जहाँ इच्छा होती है वहाँ आनन्द नहीं होता। इच्छा होने पर इच्छित वस्तु की अप्राप्ति का दुःख अनुभव होने लगता है और यह एक ऐसा रोग है कि इसके सामने हजारों प्राप्त वस्तुओं का सुख हवा हो जाता है। केवल अप्राप्त वस्तु का दुःख ही अनुभव में आता है। अप्राप्त वस्तु की इच्छा खड़ी होते ही वह सारे चित्त में व्याप्त हो जाती है, इसी कारण अन्यान्य प्राप्त वस्तुओं में सुख का अनुभव नहीं हो पाता।

सीता को प्राप्त करने के दुराग्रह के कारण रावण को मन्दोदरी–जैसी अनेकों सुन्दरियों का सुख, पुत्र–सुख, राज्य–सुख, ऐश्वर्य–सुख, सुख देने वाले नहीं रहे। मानो वे सारे सुख कुछ थे ही नहीं, उसको केवल सीता की अप्राप्ति के दुःखने ही घेर रखा था।

भोजन करते समय अनेकों प्रकार के व्यंजन सामने हों, पर यदि दाल खाने की इच्छा वाले की दाल में नमक अधिक पड़ गया तो उसका चित्त दुःख में मग्न हो जाता है, फिर उसे दूसरे व्यंजनों का सुख अनुभव नहीं होता। इच्छा ही दुःख है। यही क्लेश का मूल है। प्राप्त [illegible] का सदुपयोग करो, अप्राप्त वस्तु की इच्छा ही मत पैदा होने दो। सुखी रहोगे। इच्छा [illegible] पैदा करना ही सारे सुखों का नाश करना है।

इच्छा चेतन के लिए होती है या शरीर के लिए अथवा चित्त के लिए होती है। सो चेतन तो परिपूर्ण है, उसके लिए कोई इच्छा होती ही नहीं। शरीर केवल जीने की इच्छा करता है, उसको पोषण की और रक्षण की जरूरत है। शेष तरंगें उठाकर चित्त ही अपने को दुःख प्रदान करता है।

चित्त की विशेषता ही यही है कि अप्राप्त के पीछे पागल होकर वह स्वयं परेशान होता है और दूसरों को भी परेशान करता है। 'मैं मरूँगा और तुझे राँड़ बनाऊँगा' इस कहावत के अनुसार वह अनेक जन्म धारण करता है और शरीर और आत्मा को घसीटता है।

सुख का सागर आत्मानन्द तो प्राप्त ही है, पर उसके नित्य प्राप्त रहने पर भी चित्त विषयानन्द के लिए किस प्रकार भटकता है, यह स्पष्ट हो गया।

निगृहीत चित्त आत्मारूपी कल्पवृक्ष के समीप जाता है और उस निगृहीत अवस्था में वह जो चाहता है उसे प्राप्त होता है। निगृहीत चित्त ही सबका मूल है।

इच्छा मात्र का त्याग करने से चित्त स्वयं मर जाता है। इसी का नाम मोक्ष है। इच्छा मात्र के अभाव का नाम मोक्ष है। चित्त का इच्छा करना बंद हो जाये तो जन्म मृत्यु का चक्कर चालू नहीं रह सकता। अपनी इच्छा से ही यह शरीर प्राप्त हुआ है और अपने इच्छानुसार ही हम दूसरा शरीर धारण करते हैं।

बन्ध या मोक्ष अपने हाथ में है। भोगेच्छा ही बन्धन है। भोगेच्छा का त्याग ही मोक्ष है। शरीर से कर्म तो होंगे। अतः शरीर से शुभ कर्म करें, यज्ञ–दान और तप आदि स्वधर्म–कर्म करता जाय; परंतु उसके फलस्वरूप भोग की इच्छा न करे तो मोक्ष ही है। भोग की इच्छा करने पर तो जीव का जन्म–जन्मान्तर का भ्रमण चालू ही रहेगा, क्योंकि इच्छा वाला कर्म जन्म–मृत्यु रूप फल देने वाला ही होता है।

जैसे मेहनताने के बिना स्वेच्छा से सेवा करने वाला मनुष्य आनन्द से सेवा करता है। उसको शुरू में, मध्य में और अन्त में कभी निराशा नहीं होती, सदा आनन्द ही रहता है; क्योंकि वह मेहनत के फलस्वरूप कोई इच्छा नहीं करता। इसी प्रकार हम कर्म करते हुए उसके फल

की इच्छा न करें तो सदा आनन्द है। आनन्द को नष्ट करने वाली तो इच्छा है, आनन्द को खा जाने वाली आशा है। आशा परम दुःखरूपा है– 'आशा हि परमं दुःखम्' आशा अथवा इच्छा ही पराधीनता है। पराधीनता में सुख या आनन्द नहीं होता। जिसको इच्छा है ही नहीं, जो नित्य निराशी है, वह सदा परम आनन्द में मग्न रहता है– 'नैराश्यं परमं सुखम्।' वही मुक्त है, वह बेपरवाह और मस्त रहता है, जो आशा, इच्छा या चाह से रहित है। वह शाहनशाहों का भी शाहनशाह है। – 'जिसको कछू न चाहिए सो जग शाहनशाह।' इच्छा अथवा आशा उसको दीन बनाते हैं, पराधीन करते हैं। आनन्दमात्र को स्वाहा कर देते हैं। इतना समझने पर भी यदि हम भोगेच्छा नहीं छोड़ सकते, यही हमारा अज्ञान है, यही तो महामोह है।

जैसे फिटकरी मिश्री–जैसी दीखती है, परंतु खाने पर स्वादिष्ट नहीं लगती, जैसे बालू चीनी–जैसी दीखती है, परंतु खाने पर मीठी नहीं लगती। जैसे लकड़ी के बुरादे का लड्डू देखने में लड्डू जैसा लगता है पर वह खाया नहीं जाता। उसी प्रकार भोग–पदार्थ देखने में सुखद जान पड़ते हैं, पर वे सुख नहीं देते; बल्कि श्रम के कारण दुःखद ही होते हैं। लकड़ी का बना आम ऊपर से रसीला देखने पर भी नीरस होता है, इसी प्रकार भोग सुख रूप दीखने पर भी वस्तुतः दुःख रूप ही है। सारांश यह कि चित्त को अनेक जन्मों में अनेक बार भोगों में सुख के बदले दुःख अनुभव हो चुका है, तथापि भोग में से उसकी सुख–बुद्धि दूर नहीं होती। वर्तमान काल में जिस भोग के लिए चित्त आकुल रहता है, भोग काल में वह उस भोग से सुखी नहीं होता। यह जानते हुए भी चित्त को यह इच्छा होती है कि अमुक भोग से सुख मिलेगा। इसी का नाम 'माया' है, अपने प्राप्त भोग से हम सुखी नहीं हुए, यह अनुभव करने पर भी इसको छोड़ नहीं सकते। यही अज्ञान है, यही माया है।

जैसे जागते जीव को स्वप्न का स्त्री–भोग तृप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार चेतन आत्मा को इस जगत् का कोई भी भोग तृप्त नहीं कर सकता। हम शरीर नहीं हैं, हम चित्त नहीं हैं, हम तो निर्विकार चेतन हैं। अतएव चित्त के द्वारा कल्पित कोई भी भोग–पदार्थ हमारे इच्छा करने योग्य नहीं है, इसलिए कोई भी क्रिया जो शरीर या चित्त से होती है, उसके फल के भोग की इच्छा करना जन्म–मृत्यु के प्रवाह में, दुःख के सागर में गिरना है। स्व–स्वरूप का बोध हुए बिना, भोग से कभी सुख–बुद्धि नहीं मिट[illegible]र जगत् के प्राणी पदार्थ में सुख–बुद्धि के दूर हुए बिना जन्म–मरण मिटने वाला नहीं है।

सारे भोग क्रिया साध्य हैं। भोग अर्थात् एक क्रिया के नाश से दूसरी की उत्पत्ति, इस प्रकार क्रिया करते–करते जीवन का नाश हो जाता है।

भोग से शरीर का नाश होता है, पर चित्त का नाश नहीं होता। चित्त का शरीर इच्छा है। इच्छा से ही वह टिका है। इच्छा के मरने पर मर जाता है।

भोग से यद्यपि चित्त की भोग उत्पन्न करने वाली शक्ति घटती है, तथापि इच्छा मौजूद

रहती है। इससे उसमें दीनता और दुःख आता है। भोग मात्र की, सब इच्छाओं और सब सुखों की इच्छा–आशा छोड़े बिना किसी काल में जन्म–मरण मिटने वाला नहीं है।

सत्संग, विचार, स्वरूप–ज्ञान और वैराग्य से चित्त शान्त होता है, तब मोक्ष की प्राप्ति होती है। चित्त में इच्छा की उत्पत्ति का नाम ही दुःख की उत्पत्ति है। चित्त में इच्छा मात्र के अभाव का नाम है– परमानन्द की प्राप्ति। कोई भी दुःख हो तो जान लो कि चित्त मन्दिर में इच्छा देवी का आगमन हो गया है। उसी के परिवार क्रोध, भय और लोभ आदि हैं। चित्त में भोग की इच्छा रखते हुए मोक्ष की इच्छा ही नहीं होती।

समुद्र–जैसे नदी के जल को अपने भीतर ले लेता है, उसी प्रकार प्राप्त भोग भोग ले, उसमें जरा भी हर्ष या आसक्ति न रखे और न अप्राप्त भोग के लिए तनिक सी कामना ही करे।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमाँश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।।

'जो समस्त कामनाओं को छोड़ कर चाह मात्र का त्याग करके तथा ममता और अहंकाररहित होकर विचरता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।'

सारी कामनाओं का त्याग करो और ईश्वर का भजन करो, परमात्मा तुम्हारा भला करेगा।

ये सब चराचर प्राणी हमारे भाई ही नहीं हैं, अपितु इनके हृदय में अपने इष्टदेव परमेश्वर विराजमान हैं। वे ही इनके रूपों में प्रकट हो रहे हैं। इस नाते से इन्हें सुख पहुँचाना, परमेश्वर को सुख पहुँचाना है और इन्हें दुःख देना परमेश्वर को दुःख देना है।

सद्गुरु की अहैतुकी कृपायें

जगदीश राय बंसल "अधम"

दोहा–

लेखक नहीं लेख लिखूं, बपूरा मैं अनजान।
दाता कृपा बनी रहे, लिखता रहूं गुणगान।।

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन गुरु महाराज के लाड़ले पार्षद एवं अपने परम आदरणीय गुरुभाई श्री पुष्कर दत्त शर्मा जी से सभी आश्रमवासी परिचित होंगे। पूज्य गुरु भाई श्री शर्मा जी गाँव धनाना जिला सोनीपत हरियाणा के रहने वाले हैं। गाँव धनाना में अपने भाग्य विधाता गुरु देव जी महाराज अपनी पूज्य बुआ जी के घर जाते रहते थे। कभी–कभी महिना भर भी रह लेते थे। अतः आदरणीय श्री शर्मा जी लगभग 12 वर्ष की आयु से ही सर्व समर्थ्य जी के सम्पर्क में आ गए थे। अपनी उस अल्पायु से ही श्री शर्मा जी आज तक एक निष्ठ गुरु सेवा में समर्पित हैं और वर्तमान में श्री गुरु जन्म भूमि अलुपुर धाम (पानीपत) में निष्काम भाव से सेवा कर रहे हैं। अलुपुर से रोहतक अपने सुपुत्र श्री ऋषि राम (अध्यापक) के पास आते–जाते कभी–कभी हम गोहाना (पहले हम गोहाना रहते थे) वालों को भी निहाल कर जाते थे।

एक बार आदरणीय श्री शर्मा जी, जिनको हम प्यार से दादा पोहकर के नाम से भी पुकार लेते हैं, जब गोहाना पधारे तो अपेक्षाकृत अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे। वैसे तो दादा जी का शरीर वृद्ध हो चला है। मगर इस बार का उत्साह देखते ही बनता था। मैंने एक कहावत सुनी थी कि:–

खैर, खून, खांसी, खुशी बैर प्रीती मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान।।

इसलिए वार्तालाप के आदान प्रदान से शीघ्र ही पता चल गया कि श्री शर्मा जी अपने प्रिय पौत्र जी की कल होने वाली सगाई (शादी का प्रथम चरण) के उपलक्ष्य में रोहतक जा रहे हैं जो सर्वसमर्थ की कृपा से ही एक सम्पन्न परिवार से सम्बन्ध बना है।

हम सभी जानते हैं कि अपने पूज्य दादा जी पर अनाथ नाथ की अनन्त कृपाएँ हैं, जो समय–समय पर सिद्ध योग पत्रिका एवं परम आदरणीय श्री वासलाल जी महाराज द्वारा प्रकाशित गुरु ग्रन्थों में पढ़ने को मिलती रहती हैं। इसी प्रकार का एक संस्मरण इस बार दादा पोहकर से सुनने का सौभाग्य इस अधम को मिला। मेरी योग्यता का अभाव देखते हुए एवं श्री गुरुदेव भगवान के इस तोतले शिष्य को अपना अनुज जान कर त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे।

यह कृपा प्रसंग आज से लगभग 45 वर्ष पहले का है। एक बार आदरणीय दादा

पोहकर मल शर्मा जी अपने परम आदरणीय गुरु भाई श्री कृष्णानन्द जी से मिलने एवं अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु अपने सालवन आश्रम में गए। सायंकाल का समय था। उस समय श्री कृष्णानन्द जी रसोई घर में भोजन बनाने की व्यवस्था कर रहे थे। श्री शर्मा जी ने दूर से ही यह सब देख लिया था। अतः अपने जूते वहीं उतार कर रसोई घर में प्रवेश कर महाराज श्री कृष्णानन्द जी का उचित अभिवादन किया। श्री शर्मा जी द्वारा अभिवादन से पूर्व ही महात्मा जी जोर से बोले, कौन हो तुम? रसोई घर में ऐसे ही चले आए? हमारा भोजन अपवित्र कर दिया। किस जाति के हो तुम.....? इस प्रकार कहते–कहते भोजन का सारा सामान एवं लकड़ियाँ आदि रसोई से बाहर फेंक दिया। हाथ पैर भी धो कर नहीं आए।

श्री पुष्कर जी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि भाई जी मैं ब्राह्मण हूँ, आपका अनुज हूँ..... बहुत कुछ कहा। मगर पुज्यवर जी तो नाराज ही बोलते रहे और अपने ध्यान कक्ष में जा कर ध्यान में बैठ गए। दादा पुष्कर जी संकट में पड़ गए कि अब क्या किया जाए? मेरे द्वारा भाई जी को कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। इस प्रकार विचार कर श्री शर्मा जी ने स्नान किया। सारा सामान जुटा कर भोजन प्रसाद बनाया। तत्पश्चात् श्री प्रभू जी को भोग लगाया। फिर कमरे के बाहर बैठ गए और मन्त्र जाप करने लगे। मगर मन में ये भाव चल रहे थे–

आया था कुछ पाने को, खो दिया सन्मान।
क्या करू ना करूं, गुरुवर करो निदान।।

तथा

बिगड़ी बनाने वाले, बिगड़ी बना दे।
रूठ गए भैया मेरे, तुरन्त मना दे।।

महात्मा कृष्णानन्द की ध्यान अवस्था बहुत ऊँची थी। रोशनी की सफेद–सफेद किरणें, कमरे से बाहर आती हुई श्री शर्मा जी खुली आँखों से देख रहे थे। अन्ततः इन्तजार की घड़ियाँ समाप्त हुई और महात्मा जी कमरे से बाहर आए। उनको देखते ही श्री पुष्कर जी ने कर बन्दा, प्रार्थना की कि भाई जी मैंने स्नान कर रसोई में भोजन प्रसाद बनाया है और श्री प्रभू जी को भोग लगा दिया है। अब आप भी भोजन करने की कृपा करें। महात्मा जी ने दबी जबान से कहा कि जब भोग ही लगा दिया है तो प्रसाद पाना ही पड़ेगा। परिणामतः दोनों ने भोजन प्रसाद ग्रहण किया। रात्रि को दादा जी ने महात्मा जी से कुछ आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त किया और महात्मा जी ने अपने द्वारा कहे अपशब्दों के लिए पश्चाताप किया।

अगले दिन प्रातः ही श्री शर्मा जी अपने किसी निजी कार्य से कहीं चले गए थे। फिर सायं काल आश्रम में लौट आए। इस समय महात्मा जी का ध्यान में बैठने का समय हो चुका था। अतः महात्मा जी अपने कक्ष में जाकर ध्यान में बैठ गए। दादा पुष्कर जी भी अपने कल वाले स्थान पर बैठ कर मन्त्र जाप करने लगे। कुछ समय पश्चात् ही कल की तरह

सफेद-सफेद प्रकाश कमरे से बाहर आता दिखाई दिया। पश्चात् अपनी आँखें बन्द कर गुरु मन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। उर्दू के एक शायर ने लिखा है कि–

होता वही है जो खुदा मंजुरे होता है।

मन्त्र जाप प्रारम्भ करने के थोड़ी देर पश्चात् ही श्री शर्मा जी को फावड़ा एवं खैंची (कृषि सम्बन्धी औजार) पटकने जैसी आवाज सुनाई दी। श्री शर्मा जी इस आवाज को अनसुना सा कर मन्त्र जाप में लगे रहे। शीघ्र ही दूसरी बार वही आवाज सुनाई दी। फिर तीसरी बार और अब चौथी बार वही आवाज और निकट से सुनाई दी। श्री शर्मा जी ने आँखें खोल कर देखा कि यह सब क्या हो रहा है? श्री शर्मा जी के होश उड़ गए, भय के कारण शरीर काँपने लगा, कि चाहकर भी आवाज नहीं निकली, पसीना बहने लगा, आसन पसीने से पूरा भीग गया। कारण कि समीप ही एक बड़ा सा शेर मुँह फाड़े खाने को तैयार खड़ा है। मौत का खौफ देख कर गुरु जी की याद आना स्वाभाविक है। कहने लगे कि–

गुरु जी मेरे प्राण बचा दे।
मेरी मौत को दूर भगा दे।।
कितनों को तूने जीवन दान दिया है।
घनेरों को तूने अभय किया है।।
खड़े शेर को दूर भगा दे।
गुरु जी मेरे प्राण बचा दे।।

इस प्रकार श्री शर्मा जी ने मन ही मन में जगत नियन्ता अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक प्राण दाता योग योगेश्वर गुरु महाराज जी से आर्त प्रार्थना कि मौत से मेरी रक्षा की जाय एवं इस प्राण लेवा शेर को यहाँ से भगा दें।

उस परम पिता जगदीश्वर को, जो श्रद्धा सहित पुकारेगा।
उस सेवक का कष्ट हरण, वो दौड़ा दौड़ा आएगा।।

भगवान तो भक्त के वश में होते हैं। जैसे द्रौपती ने चीर हरण के समय पुकारा था उसी प्रकार श्री शर्मा जी ने आर्त पुकार की। चमत्कार! महान चमत्कार! जैसे ही श्री शर्मा जी की मौन पुकार समाप्त हुई वह शेर वहाँ पर दिखाई नहीं दिया।

।। बोलिए श्री सद्गुरु देव भगवान की जय।।

शेर तो वहाँ से चला गया, मगर आदरणीय श्री पुष्कर शर्मा को कुछ नहीं सूझ रहा था। न बोलने की सामर्थ्य थी, न उठ कर चलने की हिम्मत थी। अतः अपनी चादर से सारा शरीर ढांप लिया और धड़कते मन से मन्त्र जाप करने लगे।

इस घटना के लगभग एक घन्टे पश्चात् महात्मा जी ध्यान से उठे। श्री शर्मा जी के मन पर भय की इतनी मोटी परत थी कि महात्मा जी द्वारा कई आवाज लगाने पर जरा सी चादर

आँख पर से हटाकर महात्मा जी को देखा फिर खड़ा हो सके। महाप्रभू जी की आरती हुई, भोग लगाया गया। फिर दोनों भक्तजी साथ-साथ भोजन प्रसाद पाने के लिए बैठ गए। श्री शर्मा जी का हाव-भाव देख कर महात्मा जी ने पूछा, भाई जी! आप उदास दिखाई दे रहे हैं, क्या बात है? तब श्री पुष्कर जी ने आप बीती सुनाई। सारी बातें सुनकर महात्मा जी बोले, अरे भाई! वह शेर वेर कुछ नहीं था। हमारे एक योगी गुरु भाई हैं, जो कभी-कभी मुझ से मिलने आ जाते हैं। वह अपने गुरु भाईयों को तो कुछ नहीं कहता, मगर दूसरों का बिगाड़ कर देते हैं। यह सब वृतान्त सुनकर श्री शर्मा जी ने मन में समझ लिया कि सालवन आश्रम में आना खतरे से खाली नहीं है। मगर श्री पुष्कर जी ने यह बात और किसी को नहीं बताई। परंतु यह बात यहीं पर समाप्त नहीं होती। तारणहार क्या रचते हैं। देखिए आगे।

इस घटना के लगभग दो वर्ष बाद भाग्य विधाता आराध्यदेव जी महाराज ने अपना सालवन आश्रम का कार्यक्रम बनाया। सर्व समर्थ्य जी ने अपनी सेवार्थ श्री पुष्कर दत्त शर्मा को साथ में चलने का आदेश दिया। कार्यक्रम के अनुसार गुरु जी एवं पुष्कर जी, सालवन आश्रम पहुँच गए। दैनिक दिनचर्या से निवृत्त हो कर गुरुदेव भगवान विश्राम के लिए चले गए। श्री पुष्कर दत्त जी भी निकट ही भूमि पर बिस्तर लगा कर सो गए।

लीला देखो अब लीला धर की, कैसा राच रचाया है।
पुष्कर के मन शेर जो बैठा, कैसे दूर भगाया है।।

रात को एक घटना घटी। कालचक्र, युगचक्र और जगचक्र को एक साथ चलाने वाले जगतात्मा योग योगेश्वर श्री गुरुजी महाराज उठे। श्री पुष्कर जी को आवाज लगाई। अपनी प्यास को शान्त करने के लिए पानी पीने की इच्छा की। इस समय रात्री के डेढ़-दो का समय रहा होगा। पानी के लिए एक मात्र कुँआ आश्रम से कुछ ही दूरी पर था। रसोई में पानी साय काल ही समाप्त हो गया था। अब श्री पुष्कर जी को दो वर्ष पूर्व घटी शेरवाली प्राण लेवा घटना सता रही थी। कहावत है कि:-

एक तरफ कुआँ, एक तरफ खाई।

अर्थात् एक तरफ शेर का खौफ और दूसरी तरफ जगत नियन्ता का आदेश। आदरणीय भाई पुष्कर जी हिम्मत करके कोठरी से बाहर निकले। बाल्टी और रस्सी तो उठा ली मगर पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। भय की शांय-शांय से शरीर काँप रहा था। मनोबल न्यूनतम हो गया। इसी ऊहा पोह में बहुत समय निकल गया। त्रिकाल दर्शी, लौकिक रूप से अपनी चारपाई से उठे कि हमारा बच्चा कहाँ खो गया? जो पानी लेकर अब तक नहीं लौटा? आराध्यदेव के चारपाई से उठने पर जो आवाज/आहट हुई, तभी श्री पुष्कर जी अपनी समस्या श्री चरणों में निवेदित करने के उद्देश्य से गुरु जी की तरफ बढ़े। इससे पहले कि श्री पुष्कर जी कुछ प्रार्थना करते, श्री मुख ने गम्भीरता से कहा, "क्यों लल्ला मुझे प्यासा मारना

चाहते हो? पानी क्यों नहीं लाता?" नियम है कि:-

"गुरुआज्ञा न उलघनियां"

अतः श्री शर्मा जी गुरु आज्ञा को सिरोधार्य कर, स्वयं को दाव पर लगाते हुए अर्थात् समर्पण करते हुए, कुंए की तरफ दौड़ पड़े। पानी की बाल्टी भर कर वापसी में भी दौड़ते आए और एक गिलास पानी भर कर श्री कर कमलों में सेवा किया। पानी का गिलास लेकर श्री मुख ने मुस्कराते हुए पूछा, "क्यों लल्ला, रास्ते में बबर शेर तो नहीं मिला?" श्री शर्मा जी ने आश्रुपूर्ण शरीर से दण्डवत प्रणाम किया और बोले, गुरु जी शेर नहीं मिला। अब कल्याणधन से मुस्कराकर कर कहा कि "लल्ला अब शेर कभी मिलेगा भी नहीं।" इन शब्दों ने दादा पोहकर मल जी को निर्भय कर दिया। ऐसे हैं हमारे भाग्यविधाता। इस समय पूज्य ज्ञानी बाबा का एक भजन याद आता है। इससे पूर्व पूज्य दादा पोहकर मल का गुरु महिमा सुनाने के लिए धन्यवाद करता हूँ। जय गुरु देव!

भजन:-

गुरु चन्द मोहन करतार, तुम्हारी महिमा अपरम्पार
भेद तेरा पाया ना।.....।

महादेव महादेव महादेवेति वादिनः।
पश्याद्यामि महात्रस्तो नामश्रवणलोभतः।।

ब्रह्मवैवर्तपुराण 1/6/48-49

अर्थात- जो महादेव का नाम लेता है, मैं उसके पीछे नाम-श्रवण-प्रलोभ से चलता हूँ। शिवजी के प्रति यह श्रद्धा-भाव स्वंय भगवान श्रीकृष्ण का है।

महा औषधि है- "समय"

('कल्याण' पत्रिका से साभार)

प्रेषक- रमेश्वर 'दद्दू' (गंगापुर सिटी)

आज के युग में नाना प्रकार की औषधियों का आविष्कार हो रहा है। डाक्टर लोग नई-नई दवाईयों के प्रयोग से रोगों का इलाज कर रहे हैं। किंतु एक औषधि ऐसी है जो पुराने युग से आज तक वैसी ही अचूक और चमत्कारिणी बनी हुई है।

हम उस औषधि को नहीं जानते किंतु प्रयोग अवश्य करते हैं और लाभ उठाते हैं। अगर ईश्वर की दी हुई यह दवा न होती तो मनुष्य का जीवन दूभर हो जाता और वह क्रोध, द्वेष, आवेश या विक्षोभ के मानसिक आघात के एक झटके में ही मर जाता। उस औषधि का नाम है-'समय'।

समय की गति तीव्र है। इसकी गति से मनुष्य के बड़े-बड़े दुःख, क्षोभ, चिन्ताएँ स्वतः दूर हो जाती हैं। बड़े-बड़े घाव भर जाते हैं। ज्यों-ज्यों शोक आदि दुःख, मृत्यु, क्लेश अधिक दिन बीतने पर पुराने होते जाते हैं, त्यों-त्यों मन और शरीर पर उनका प्रभाव कम होता जाता है। कुछ समय बाद (कालान्तर में) एक समय ऐसा आता है, जब वे दर्दनाक हादसे, घबरा देने वाली स्मृतियाँ बिल्कुल भुला दिये जाते हैं।

समय चक्र के गुजरने के साथ बड़ी-बड़ी खाइयाँ पट जाती हैं। वक्त कटने के साथ कुटुम्बों में रहने वाली कटुताएँ दूर हो जाती हैं। समय का प्रभाव शान्तिदायक है। मृदु मरहम जैसा होता है। समय के प्रभाव से मन का क्लेश कम हो जाता है। चित्त की चंचलता दूर हो जाती है। बड़ी-बड़ी कुण्ठाएँ अदृश्य हो जाती हैं। जीवन के नये-नये अनुभवों को सम्भालने के योग्य आत्मशक्ति आ जाती है।

आवेश एक प्रकार के तूफान हैं। क्रोध और क्षोभ एक प्रकार के तूफान हैं। ये हमारे जीवन में बड़े झोंकों के रूप में आते हैं। उस समय मानसिक क्षोभ का आघात इतना अधिक होता है कि यदि समय न बीते तो आदमी आत्महत्या ही कर डाले, दूसरे का वध कर दे। लेकिन यदि कोई व्यक्ति तनिक ठहर जाये और कुछ समय गुजर जाने दे तो उसमें उन संकटों को झेलने की आत्म शक्ति आ जाती है।

कहते हैं- यदि तुम्हें कोई गाली दे या थप्पड़ दे तो उसका जवाब तुरन्त मत दो थोड़ी देर ठहर के ठण्डा पानी पी के उसका जवाब दो।

समय एक स्वच्छ प्रभाव है। दुःख और कष्ट के दिन भी आते हैं, पतझड़ भी आता है। मौसम बदलता रहता है। दिन के बाद रात आती है। दुःख जाते हैं, सुख आते हैं। पतझड़ के

बाद बसन्त आता है मौसम खुशनुमा बन जाता है। समय की गति बदलती रहती है। समय ही मनुष्य को नये–नये अनुभव कराता रहता है। नये ज्ञान देता है। समय चक्र ने राम–कृष्ण जैसे महापुरुषों को भी अपने प्रकोप का शिकार बना दिया। अच्छे–अच्छे राजे–महाराजे बदल गये। कल का बच्चा आज का युवा बन गया और युवा वृद्ध।

आज हम बेहद परेशान हैं। बड़ी कठिन समस्याओं से सामना हो रहा है। हमें ऐसा लगता है कि हमारा ये दुःख दूर होगा कि नहीं। कहीं हम आत्महत्या न कर बैठें। एक सज्जन को व्यापार में बहुत बड़ा नुकसान हो गया। वो भी रो रहा किसी के घर में बाप–बेटे में झगड़े चल रहे, सास–बहू एक दूसरे की चोटी खींच रही हैं। बड़ी कलह हो रही है। बेटा आवारा–बदचलन हो गया। किसी को रोजगार की विकट समस्या। बच्चों को भोजन की व्यवस्था नहीं।

घबराएँ नहीं। धैर्य धारण करें। समय का इन्तजार करें। एक समय ऐसा आयेगा जिसमें आपकी सारी समस्या अपने आप हल होती चली जायेगी। लेकिन जरूरत है केवल धैर्य रखने की या समय के इन्तजार की।

बन्धुओं समय हमेशा एक सा नहीं रहता। अगर एक सा रहता तो आज भी राजा का राज रहता। आज भी राम–कृष्ण का राज रहता। गरीब–गरीब ही रहता, धनवान–धनवान ही रहता।

अच्छे–अच्छे महलों वाले सड़कों पर आ गये और गरीबी में जीने वाले महलों में आ गये। सही समय है, अनुकूल समय है। सर्व सुख है तो उसका गर्व मत करो उसमें फूलो मत, समय को भूलो मत, सही समय में, आने वाले समय को सुधारने का प्रयास करो। अच्छे पुण्यदायक कर्म करो जिससे आने वाला समय भी आपकी जिन्दगी में खुशहाली लाये।

यदि समय प्रतिकूल है तो संतोष धारण करो, धैर्य के साथ अच्छे समय का इन्तजार करो। दुःख जायेगा, सुख आयेगा। समय कोई भी हो कभी एक सा नहीं रहता। बदलता रहता है।

ईश्वर ने मनुष्य को दुःखों से छुटकारे के लिए जो शक्तियाँ दी हैं, उनमें से कष्टों को भूलने की शक्ति भी दी है, जो बड़ी मूल्यवान है। समय बीतने पर दुःख स्वयं ही दूर हो जाते हैं। मन का क्लेश भी समय बीतने पर खुद हल्का होने लगता है।

आपके जीवन में ऐसे–ऐसे संकट आयेंगे तो आपको ऐसा लगेगा कि मानो अब मेरा अन्त समय आ गया। बचने का कोई मार्ग नहीं, चारों ओर अन्धकार है प्रकार की रेखा तक नजर नहीं आती। फिर भी आप निराश न हों हिम्मत न हारें समय बीतने दें। बस कुछ दिन ठहर जाएं। यही समय आपके जख्मों पर सुखद, मृदु मरहम लगायेगा। आप अपनी विपत्ति एवं सब कष्ट भूल जायेंगे।

परमाराध्य सद्गुरुदेव (श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) योगिराज की जन्मशती पर विरचित – पद्यात्मिका श्रद्धांजली –

(1)

शतवर्ष पर शतनमन हम, गुरुदेव मन से कर रहे।
श्री पादपद्मपराग पावित, पांसु मस्तक धर रहे।।

(2)

मस्तिष्क में मन में मनोरम, आपकी छवि लख रहे।
दत्त माणिक रत्न गुरुवर, सविधि सम्यक् रख रहे।।

(3)

हम अनाथ अकिंचनों की, आप ही सुधि ले रहे।
धाम भी तज दिव्य निज का, धार तनु तपते रहे।।

(4)

तप तप्त वपु औ युक्त होकर, सरल–साधारण रहे।
त्याग देहाभास को, आत्मस्थ हो शिव ही रहे।।

(5)

सगुण–निर्गुण स्वयं होकर, रूप दिखलाते रहे।
अद्भुत तथा अदृष्ट युति से, योग प्रकटाते रहे।।

(6)

वह भव्यता तेजस्विता, हम सदा पाते रहे।
दिव्यता अन्यत्र भी थी, पर लजाते वे रहे।।

(7)

अपनी व्यथायें और दुखड़े, गुरुवर! सुनाते हम रहे।
सुनते उन्हें पर बिन बतायें, सर्वदा हरते रहे।।

(8)

अब भी कभी जब-जब हृदय से, याचना करते रहे।
यह सत्य है वह कष्ट-बाधा, सर्वथा हरते रहे।।

(9)

कितना अचम्भा यह रहा, प्रत्यक्ष प्रभु प्रकटे रहे।
तज रत्न प्रेरित स्वार्थवश, हम कोयले बिनते रहे।।

(10)

चेत अब भी चेत ले रे, गुरुकृपा बरसा रहे।
वे कृपासागर न भूले, तू भले भूला रहे।।

(11)

अनजान बन क्या जान पाये, अतुल महिमावान् को।
अक्षम्य यह प्रभुवर ! अनादर, तव सदृश भगवान् को।।

(12)

यद्यपि भगवन ! प्रकट रूप में, मध्य नहीं हैं आप सभी में।
पुनरपि प्रभुवर ! तव वचनामृत, अंकित सबके हृदय देश में।।

(13)

सिद्धयोग का पथ दर्शाकर, योग-सुपथ आरूढ़ कराकर।
दीक्षित शिष्य बना अपनाकर, जीवन को जीवन्त बनाकर।।

(14)

करुणाकर ! योगीश्वर ! गुरुवर ! धन्य हुए हम सद्गुरु पाकर।
अनृण कभी क्या हो पायेंगे, ऋणी गुरो ! जन्मजन्मान्तर।।

(15)

इसीलिए कुछ करिये ऐसा, लें हम जन्म यदा धरणी पर।
सदा आप ही हों मम गुरुवर, बनूँ आपका पात्र शिष्यवर।।

- देववाण्यां रूपान्तरणम् -

(1)

शतवर्षमाप्ते शतशो नमामहे, गुरो ! भवद्भ्यो हृदयान्तरेण।
पदाब्जयोर्निर्झरितैः परागैः, दध्यो वयं मूर्धनि पूतपासवः।।

(2)

शिरोमनोभ्यां भवतां मनोज्ञां, प्रेक्षामहे केवलमेकमाभाम्।
महामन्त्ररूपे प्रदत्तं सुरत्नं, रक्षामहे तं विधिना च सम्यक्।।

(3)

नोऽकिंचनानां विना स्वामिनश्च, योगन्त क्षेज्य भवान् विधन्ते।
संत्यज्य दिव्यं च निजं च धाम, धृत्वा तनुं स्वां व्यचरन् तपांसि।।

(4)

तपस्तपूवपुषाऽस्थि तो योग एव, प्रतीयमानः सरलश्च प्राकृतः।
देहात्मभावं व्यतिरिच्य साक्षात्, शिवः स्वयं स्वात्मनि लीन एव।।

(5)

संश्रित्य सगुणमगुणं च रूपम्, देहे स्वकीये स ददर्श तत्त्वम्।
योगेन वपुषा स्वयमाविरासीत्, अभूच्चाद्भुता संयुतिरप्यदृष्टा।।

(6)

तेजस्विता च भवदीय भव्यता, अस्माभिरालोकिता सर्वदैव।
अन्यत्र कुत्रापि न दृष्टिमागता, अहो! गुरुणां गुरुताऽनवद्या।।

(7)

कष्टान्निजान् चापि व्यथाकथाश्च, संश्राव्यमाणाश्च सदा वयं स्म।
संश्रुत्य सर्वान् हृदयेन दूयता, हरते स्वयं स्म समनूद्य किंचित्।।

(8)

अद्यापि यावत् हृदयान्तरेण, सदा यदा याचमाना वयं स्म।
सर्वास्तु बाधा अहरत् स सर्वदा, नास्त्यत्र कश्चिदपि संशयः किल।।

(9)

एतत् कियद् विस्मयकारकं च, आसीत् प्रकटितः प्रभुरेव साक्षात्।
स्वार्थाभिभूताः परित्यज्य रत्नं, चिन्वायमाना कलुषाङ्गितानि।।

(10)

प्रजागर त्वमचिरेण चेतः, निरन्तरं वर्षति नो गुरोः कृपा।
न विस्मृतिं याति कृपार्णवः सः, कामं क्वचित् विस्मरणं भवत्येव।।

(11)

विद्मो वयं नो गुरुतां गुरोर्नो, मन्दा यतो हेलया यत् प्रकुर्मः।
अक्षम्य एवास्ति कृतोऽपराधः, कृते च भवतां भगवन्निभानाम्।।

(12)

नैवास्ति मध्ये प्रकटे शरीरे, गुरो! भवानद्य समेषु सत्सु।
प्रभो! तथापि भवतां वचोऽमृतं, अस्त्यद्धितं तत् हृदयेऽस्मदीये।।

(13)

सिद्धस्य योगस्य पथं प्रदर्श्य, प्रविश्य मार्गं च प्रवेश्य योगे।
शिष्यत्वमापाद्य निजं विधाय, नवं जीवनं जीवमानं च कुर्वन्।।

(14)

भवान् योगिसम्राट करुणालयोऽस्ति, धन्यावयं प्राप्य समर्थसद्गुरुम्।
कुचित् कदाचिदनृणावयं स्याम, ऋणिनो वयं जन्मजन्मान्तराणाम्।।

(15)

करोतु करुणामतस्तथाविधां, जनुर्लभेयम् धरणीतले यदा।
भूयोऽपि भूयाद् भवानेव मद्गुरुः, भवेत् पात्रता मे भवद् शिष्यतायाः।।

On the Completion of hundred years of our Guru Deo (Yogiraj Brahamlins Shri Chandra Mohan Ji Maharaj)

(1)

Gurudeo, bow down we with hearts hundred times to you,
On the Completion of your hundred years.
We place on our heads the odours emanating from your lotus feet,
mingled with the sacred sands of those trodden paths of yours.

(2)

Visualize we only your splendid splendour
with our head and heart;
The treasure bestowed upon us by you O Gurudeo !
is being shielded by us with smartly art.

(3)

Destitutes and paupers as we are,
you are the only one, our care-taker.
Relinquishing even the divine seat of heavens,
you came in human body accepting for us your own torture.

(4)

Practising severe meditation and with a subdued mind,
you seemed so simple but the most sublime.
Discarding the infatuation of the bodily form,
Delighted within the self, identifying the Lord Shiv, the Prime.

(5)

Becoming himself as Sagun and Nirgun,
You exposed both the attributes.
With an amazing and marvellous Combination,
You expounded the yogic altitudes.

(6)

That magnificence and munificence,
We had always had.
The divinities were elsewhere too,
But within you were those clad.

(7)

Woeful episodes and troubles of ours,
Presented we always O Gurudeo ! before you.
Listening them all but telling nothing,
your greatness removed them all too.

(8)

Even now at our impatient call,
Oozing out of the core of our heart.
It is virtually a total truth,
We had what we had thought.

(9)

How much astonishing had it been,
We had the God in carnate eyes to eyes.
Leaving aside the precious jewels,
Prefered we to store dusts for our own sakes.

(10)

Beware now and be aware,
The Guru's mercy is still being showered upon.
He, being like an ocean of mercy,
Forgets he not, may you let on.

(11)

Being ignorent could we perceive,
The peerless grandeur of our Guru, the Great.
Committed we the Sin, an unpardonable one,
To Him, bearing the God's all trai's.

(12)

Though our revered Gurudeo is not
Yet amidst us all.
But the nectarine words of yours,
Would remain ever writ upon within hearts of all.

(13)

Showing us the Path of Siddha-yog,
And Causing us to tread upon the Path of Yog.
Accepting us by initiating us our own disciples,
Making our lives live-ones blossoming with Yog.

(14)

O Merciful ! Lord of Yogis ! Guru the Great !
Supremely satisfied we are to find you as our Sadguru !
Could we be bene' t of the debts ever.
Indebted we are right from plenty of births to you.

(15)

May you be pleased to do Such an act,
While we take another birth on earth.
May you only be our Spiritual Guru,
Myself be you devoted and dedicated disciple too.

- द्वारका प्रसाद शर्मा

शोक संदेश

सूचित करते हुए दुःख हो रहा है कि पुराने गुरुभाई लाड़म निवासी श्री गुलाब सिंह सैनी का 9 अगस्त को देहावसान हो गया है। बहुत सात्विक भाव रखते हुए देहत्याग किया है। ध्यानाभ्यास की स्थिति में ही। श्री प्रभु जी अवश्य उन्हें अपना अभय गोद देंगे। दुःखी परिवार को श्री प्रभु जी इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

जय गुरुदेव

सम्पादक ''सिद्धयोग''

वंदना

भूपेन्द 'अंकुश' जलेसर ।

हे मेरी माँ ! भारती नव कल्पना के पंख दे।
दे कंठ में रख बाँसुरी या कंठ में रख शंख दे।।
शारदे! वीणा बजा मेरे मन-मिरग को मोह ले।
आलाप कोमल अति मधुर आरोह ले; अवरोह ले।।
नव राग औ" नव रागिनी गाता रहूँ नित सर्वदा।
मेरे भाव रूपी हंस पर तू कर सवारी ज्ञानदा।।
निज हाथ की माला मेरी गर्दन में माता डाल दे।
दे शब्द-शक्ति रीति-रस हर छन्द में लय ताल दे।।
मन-वासना के पंक में पंकज उगा दे श्वेत; मा।
फिर कंज को आसन बना देना, मुझे तू चेत; मा।।
नई चेतना की रश्मि में पुस्तक पढ़ूँ तेरे हाथ की।
सुज्ञान के आलोक में सूरत निहारू नाथ की।।

छन्द

राग की दवा सिद्ध-गुफा-धूल लीजिए।
कृपा के लिए अभिमन्त्रित फूल लीजिए।।
स्वस्थ रहने के लिए जीवन के तत्व का।
अभ्यास रोज करने का उसूल लीजिए।।

जड़ी–बूटी चिकित्सा : युग की आवश्यकता

पं. लीलापत शर्मा

एक बार ब्रह्मा जी ने जीवक ऋषि को आदेश दिया कि पृथ्वी पर जो पत्ता पौधा, वृक्ष, वनस्पति व्यर्थ दिखे, तोड़ लाओ। ग्यारह वर्ष तक पृथ्वी पर घूमते रहने के बाद ऋषिवर लौटे और ब्रह्मा जी के समक्ष नतमस्तक होकर बोले– प्रभो! इन ग्यारह वर्षों में पूरी पृथ्वी पर भटका हूं, प्रत्येक पौधे के गुण–दोष को परखा, पृथ्वी पर एक भी ऐसा वृक्ष नहीं मिला जो किसी न किसी व्याधि के उन्मूलन में सहायक न हो। इस उदाहरण से वृक्ष, वनस्पतियों की औषधीय गुणवत्ता का भान होता है।

आज सभ्यता की घुड़दौड़ आपाधापी में मनुष्य को स्वास्थ्य के विषय में इस सीमा तक परावलंबी बना दिया है कि वह प्राकृतिक जीवन क्रम भी भुला बैठा है। फलतः आए दिन रोग–शोकों के विग्रह खड़े होते रहते हैं व छोटी–छोटी व्याधियों के नाम पर नाप्तनाथ धन नष्ट होता रहता है। मनुष्य अंदर से खोखला होता चला जा रहा है। जीवनी शक्ति का चारों ओर अभाव नजर आता है। आहार–विहार में समाविष्ट कृत्रिमता ने जिस प्रकार जिस सीमा तक शरीर के अंग अवयवों को अपंग और असमर्थ बनाया, उसी प्रकार चिकित्सा क्रम भी बनते चले गए। पूर्वकाल में आयुर्वेद ही स्वास्थ्य संरक्षण का एकमात्र माध्यम था। धीरे–धीरे बृहत्तर भारत में समाविष्ट अन्य संस्कृतियों के साथ अन्य पद्धतियां भी आईं और आज चिकित्सा के नाम पर ढेरों पद्धतियां प्रयुक्त होती हैं। इसे दुर्योग ही कहेंगे कि आयुर्वेद जैसी विशुद्ध चिकित्सा प्रणाली पर भी गत दशाब्दियों में वज्रपात हुआ है। इसे भी आधुनिक बनाने की ललक में आतुर गिने चुने विद्वानों ने इसकी उपयोगिता और भी कम कर दी है। आज जहां आयुर्वेद के योगों पर से लोगों का विश्वास घटता चला जा रहा है, वहीं तुरंत ठीक होने की आवेशपूर्ण जल्दबाजी ने उन्हें ऐलोपैथी का गुलाम बना दिया है। अनेक प्रकार की पद्धतियां प्रचलित होते हुए भी चारों ओर से एक ही मांग है कि वैकल्पिक चिकित्सा प्रणाली खोज निकाली जाए, मानवता को स्वास्थ्य संकट से मुक्ति दिलाई जाए।

यह विडंबना ही है कि जिन वनौषधियों के प्रयोग के कारण भारतवर्ष की विशिष्टता एवं संपन्नता आंकी जाती थी, उनके प्रयोग को भारतवासी ही भुला बैठे थे। पश्चिम, जर्मनी, हंगारी, सोवियत रूस, इण्डोनेशिया, चीन, जापान देशों में जहां जड़ी–बूटियों से चिकित्सा पर अनुसंधान कार्य होकर सफल प्रयोग भी किए जा रहे हैं, वहां इस हरीतिमा संपदा की जानकारी सारे विश्व को देने वाले भारत के चिकित्सक मनीषी स्वयं पाश्चात्याभिमुखी होते चले जा रहे हैं। आयुर्वेद, वनौषधि संपदा की गरिमा भुला देने का कारण यदि खोजा जाए तो इसे मात्र बौद्धिक परावलंबन ही कहा जाएगा। वैक्सीन, मारक, एण्टीबायोटिक्स, रेडीएशन, तथाकथित स्वास्थ्य संवर्धक

विटामिन, हारमोन के घातक दुष्परिणामों पर सभी विचारशीलों ने गहराई से सोचा है। वे इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि यदि कोई निरापद जीवनी शक्ति संवर्धक औषधियां हो सकती है तो वे मात्र प्राकृतिक रूप में पाई जाने वाली वनौषधियां ही है। आहार-विहार के सामान्य नियमों का पालन करते हुए श्रम या व्यायाम को जीवन में स्थान देते हुए मनुष्य सहज ही अपने अंत:करण की सामर्थ्य को बढ़ा व प्रखर बना सकता है। यदि आधि-व्याधियों से रोकथाम हेतु आवश्यकता आ ही पड़े तो चारों ओर सहज ही उपलब्ध वनौषधियों से वह अपनी चिकित्सा भी करता रह सकता है। यह पद्धति हानि रहित तो है ही, आर्थिक दृष्टि से भी हमारे जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए एक मात्र अवलंबन भी है।

शरीर का धर्म है अपनी रक्षा के लिए व्यवस्था बनाना। जीवनी शक्ति के रूप में उसे एक सुरक्षा संस्थान मिला हुआ है। रक्त के श्वेत कण एवं इम्यून संस्थान सुरक्षा सेना, सीमा आरक्षी बल का काम करते है। बाह्य आक्रमणकारी जीवाणु विषाणु पहले मानव शरीर में सुरक्षा शक्ति की कमजोरी का जायजा लेते हैं। उनकी घातक सामर्थ्य में वृद्धि शरीर की कमजोरी के साथ बढ़ती जाती है एवं शरीर रोगी होता जाता है। रोग से निवृत्ति भी इस पर निर्भर करती है कि कितना शीघ्र विकृत द्रव्यों का निष्कासन होता है। गुर्दे छलनी की तरह रक्त में से विजातीय द्रव्यों को निकाल कर मूत्र के रूप में बाहर फेंकते हैं। यही गुर्दे जब रोगग्रस्त हो जाते है तब सारा विजातीय द्रव्य शरीर में एकत्र होता चला जाता है। ऐसे व्यक्ति जीवित लाश की तरह अपनी यात्रा खींचते है, न वे श्वास ले पाते है न खाना ठीक से खा पाते है। बाह्य जीवाणु, विषाणुओं के घातक प्रभाव उन्हें शीघ्र मृत्यु के मुख में ले जाता है। अपाचन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विकार द्रव्य जब एकत्र होते चले जाते है, आहार विहार में व्यतिक्रम आ जाता है। प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या का निर्धारण नहीं हो पाता है तो रोगों की बाढ़ सी आ जाती है।

इस मूल आधार को समझने के बाद चिकित्सा व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित कर सकना संभव है। किसी भी लक्षण को दबाने के बजाय उसे जन्म देने वाले कारण को जड़ से मिटाना ही श्रेयस्कर है। तुरंत लाभ की दृष्टि से तो यही उचित लगता है कि दृष्टिगत लक्षण को मिटा दिया जाए। गंदगी पर मिट्टी डालने से वह आखों से ओझल तो हो सकती है पर नष्ट नहीं होती। दर्द को वेदना नाशक औषधियों से उस समय तो मिटाया जा सकता है, लेकिन मूल रूप में बैठे रोग को यदि समूल नष्ट नहीं किया गया तो वह नए रूप में अधिक तीव्रता के साथ उभर कर आ सकता है। अत: निष्कर्ष यही निकलता है कि चिकित्सा पद्धति के अंतराल में छिपे अंधविश्वास को जड़ से निकाल फेंक कर अब जनमानस को अपनी दृष्टि का परिमार्जन करना ही चाहिए। जो श्रेष्ठ है वह तो ग्राह्य है पर सामयिक लाभ का दर्शन किसी भी मूल्य पर जीवन में नहीं उतारा जा सकता।

जहां तक सिद्धांतों, रोग निदान परीक्षण का सवाल है, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को धन्यवाद दिया जाना चाहिए और उसकी उपलब्धियों की प्रशंसा भी की जानी चाहिए। उपचार पक्ष से असहमत होते हुए अब आवश्यकता आ पड़ी है कि जड़ी-बूटियों के द्वारा उपचार पद्धति का

पुनर्जीवन किया जाए। इनके उपयोग का विज्ञान सम्मत ढंग जनमानस को समझाया व हृदयंगम कराया जाए। वनस्पतियों का विशाल जगत हमें प्राकृतिक जीवन क्रम को अपनाने हेतु सतत प्रेरित, आमंत्रित करता है। आवश्यकता उनका महत्व समझने भर की है।

वनस्पति जगत के कई भेद हैं। एक वे जलाने, खाद या उपकरण बनाने के काम आती हैं। दूसरी वे जिन्हें खाकर प्राणी अपना गुजारा करते हैं, मनुष्यों से लेकर पशुपक्षी वर्ग के जीवधारी इसी श्रेणी में आते हैं। किसे पत्ती, किसे कंदमूल, किसे बीज अनुकूल पड़ते हैं, यह रुचि विशेष की बात है। यह सभी वर्ग वनस्पतियों के ही हैं। तीसरा वर्ग औषधियों का है वे घास-पात जैसी दिखती तो हैं पर अपने विशेष गुण के कारण रोग निवारण आरोग्य वर्धन एवं परिशोधन के काम आती हैं। चिकित्सा जगत में इन्हीं की प्रमुखता है। यों उसमें खनिज एवं विषों का रूपांतरण भी सम्मिलित हो गया है, किंतु बाहुल्य चिकित्सा क्षेत्र में वनस्पतियों का ही है। उन्हीं को चूर्ण, सत्व, गोली, अवलेह, अर्क, आसव आदि के रूप में एकाकी अथवा सम्मिश्रणों के साथ प्रयोग किया जाता है। यह वनस्पति का औषधि पक्ष है। विधाता द्वारा मनुष्यों को दिए गए अनेक उपहारों में वनौषधियों को भी एक ऐसा ही वरदान कहा जा सकता है। जिसने शारीरिक व्याधियों और मानसिक व्याधियों के निवारण में देवताओं जैसे अनुग्रह प्रस्तुत किए हैं।

आहार एवं औषधीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियां अपने आप में पूर्ण हैं। उनमें से प्रत्येक की संरचना अनेक यौगिकों, क्षारों रसायनों और खनिजों के सम्मिश्रण से हुई है।

प्राणियों की आदतों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वे जिस वनस्पति वर्ग पर निर्भर हैं, उतने से ही अपना काम चला लेते हैं। अनेक सम्मिश्रणों की फिराक में नहीं फिरते। गाय, घोड़ा, वर्ग के प्राणी घास पसंद करते हैं। ऊंट, बकरी जैसे पत्तों के सहारे निर्वाह करते हैं। बंदर को फल पसंद हैं तो चिड़िया को बीज अच्छे लगते हैं। इनमें हर एक को कई-कई वनस्पतियों की तो छूट है कि एक के न मिलने पर दूसरे के सहारे काम चल सके पर ऐसा नहीं होता कि कोई जब भी कुछ खाए तो कई-कई को खोज कर उनकी चटनी बनाए, तब कहीं उन्हें गले उतारे।

शास्त्रोक्त एकौषधि पद्धति को अब नए सिरे से पुनर्जीवन देना होगा। आयुर्वेद के कर्णधारों ने एक रोग में एक समय में एक ही जड़ी बूटी देने का नियम निर्धारित किया था। सम्मिश्रणों की बात तो बहुत बाद में सूझी। जड़ी बूटियों की संख्या अनगिनत है। इतने पर भी गुण धर्म के हिसाब से उनके वर्ग अधिक नहीं हैं। शुभारंभ की दृष्टि से यही सुविधाजनक पड़ेगा कि जो औषधियाँ सर्वत्र उगती हैं उनमें से एक का सीमित संख्या में इस प्रकार चुनाव किया जाय कि उसमें रोग निवारण के लिए आवश्यक सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो सके।

(विभूति फीचर्स से साभार)

एकमेवाद्वितीयम्

वेदान्त की शिक्षा क्या है? प्रथमतः यह शिक्षा देता है कि सत्य–दर्शन के लिए तुम्हें अपने से भी बाहर जाने की जरूरत नहीं। सभी अतीत और सभी अनागत इसी वर्तमान में निहित हैं। कभी किसी ने अतीत को नहीं देखा। क्या तुममें से किसी ने अतीत को देखा है? जब यह सोचते हो कि तुम अतीत को जानते हो, तो तुम केवल वर्तमान में ही अतीत की कल्पना करते हो। भविष्य को देखने के लिए तुम्हें उसे वर्तमान में उतार लाना पड़ेगा, तो वर्तमान यथार्थ सत्य है–शेष सब कल्पना है। वर्तमान ही सब कुछ है। केवल वही 'एक' है– **एकमेवाद्वितीयम्**। जो कुछ है, सब इसी में है। अनन्त काल का एक क्षण दूसरे प्रत्येक क्षण की ही भांति अपने में पूर्ण और सबको समाहित कर लेने वाला है। जो कुछ है, था और होगा, सब इसी वर्तमान में है। इससे परे किसी कल्पना में कोई प्रवृत्त हो तो वह विफल मनोरथ होगा।

क्या इस पृथ्वी से भिन्न स्वर्ग का चित्रण कोई धर्म कर सकता है? और यह सब कला मात्र है, केवल इस कला का ज्ञान हमें धीरे–धीरे होता है। हम पंचेन्द्रियों के सहारे इस सृष्टि को निरखते हैं और उसे रंग–रूप–शब्द आदि से युक्त स्थूल ही पाते हैं। मान लो, विद्युत–चेतना का मुझमें स्फुरण हो जाय तो सब कुछ बदल जायेगा। मान लो कि मेरी इन्द्रियाँ सूक्ष्मतर हो जायें, तो तुम सब बदले नजर आओगे। मैं ही बदल जाऊँ तो तुम भी बदल जाओगे। यदि मैं इन्द्रियों की सीमा पार कर लूँ, तो तुम सब आत्मरूप तथा ईश्वर–रूप दिखोगे। जगत् का दृश्य रूप सत्य नहीं है।

हम इसको शनैः शनैः समझ सकेंगे और तब हम देखेंगे कि स्वर्ग आदि सब कुछ यहीं है, इसी क्षण है और दिव्य सत्ता पर अध्यासों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह सत्ता सभी–लोकों एवं स्वर्गों से बढ़कर है। लोगों का विचार है कि यह संसार त्रुटिपूर्ण है और वे कल्पना करते हैं कि स्वर्ग कहीं अन्यत्र है। यह संसार बुरा नहीं है। तुम जानो तो यह साक्षात् ईश्वर है। इसका बोध भी दूभर है और इस पर विश्वास करना और भी दुष्कर है। कल फाँसी पर लटकाया जाने वाला हत्यारा भी ईश्वर है, पूर्ण ब्रह्म है। अवश्य ही यह विषय जटिल है, पर वह बोधगम्य हो सकता है।

इसीलिए वेदान्त का प्रतिपाद्य है 'विश्व का एकत्व', विश्वबन्धुत्व नहीं। मैं भी वैसा हूँ, जैसा एक मनुष्य है, एक जानवर है– बुरा, भला या और कुछ भी। सब परिस्थितियों में यह एक ही देह, एक ही मन और एक ही आत्मा है। आत्मा का अन्त नहीं। कहीं कोई विनाश नहीं, देह का भी अन्त नहीं। मन भी मरता नहीं है। देह का अन्त हो कैसे? एक पत्ती झड़ जाय तो क्या पेड़ का अन्त हो जायेगा? यह विराट् विश्व ही मेरी देह है। देखो, कैसी इसकी अविकल परम्परा है। सारे मन मेरे मन हैं। सब के पैरों से मैं ही चलता हूँ। सब के मुँह से मैं ही बोलता हूँ। सब के शरीर में मेरा ही निवास है।

–स्वामी विवेकानन्द

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

SEPTEMBER 2009

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
अन्तर्कोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

_____

□□□□□□

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आच्छन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पैण्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर की पर्चों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु० 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु० 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य म. (डॉ.) दासलाल शर्मा